श्री वीतरागाय नमः



मूलगुणों पर विचार

धर्म और उसकी कोटि

जैनधर्ममें रत्नत्रय सहित आत्माका परिणाम ही आत्माका माना गया है। धर्म और आत्मामें कुछ भी भेदभाव नहीं है। इसे आत्माका मुख्य अंग रत्नत्रय है। यह आत्मा अमूर्तीक है इसलिये आत्माका यह रत्नत्रय धर्म भी अमूर्तीक ही है। आत्मा ... परद्रव्योंसे अत्यंत परातीत है इसलिये यह रत्नत्रय आत्मीय ... समस्त परपदार्थोंसे निवृत्तिरूप ही है।

...मा मोह, राग द्वेष आदि विकारभावोंसे सर्वथा रहित ...संसारकी समस्त दशाओंसे परातीत है। समस्त संसारके ...से रहित है। जिस समय आत्मा अपने शुद्धबुद्ध ज्ञायक ... परम निरंजन अवस्थामें स्थिर होता है उस समय यह ...न्य समस्त प्रकारकी उपाधिको छोडकर एक केवल रत्न- ... समावर्ती होता है। अपने स्वरूपमें परणत होता है। अपने ...में तल्लीन होता है। बस यह आत्माकी अवस्था रत्नत्रयरूप

अवस्था है और इस अवस्थाका प्राप्त होना आत्मधर्म प्राप्त करना कह लाता है। इसप्रकार अभेदरत्नत्रयकी प्राप्ति साधारण संसारी जीवों को अतिशय दुर्लभ है। यद्यपि इस जीवने इसप्रकारके धर्मकी प्राप्तिके लिये अनादिकालसे आजपर्यंत बहुत ही प्रयत्न किया परंतु सन्मार्गकी प्राप्तिके बिना उस सर्वोत्कृष्ट अविनाशीक आत्मधर्मको यह प्राप्त न कर सका और इसीलिये यह संसारके परिभ्रमणसे मुक्त न हो सका। जन्म मरणकी असह्य पीडासे परिमुक्त न हो सका। पराधीनताका परित्याग न कर सका। जीवको जबतक सन्मार्ग प्राप्त नहीं होता है तबतक न तो उसको सुख है न शांति है, न स्वतंत्रताका साम्राज्य है और न बंधन रहित अवस्था है।

आचार्योंने पद २ पर यह बड़ा उपदेश दिया है कि हे जीवो! यदि दु:खोंसे मुक्त होना चाहते हो, पराधीनताके अपरिमित कष्टोंसे बचना चाहते हो, संसारका बंधन तोडना चाहते हो तो सबसे प्रथम सन्मार्गको ग्रहण करो, सन्मार्गको पहिचानो और सन्मार्गपर चलो।

एक बात यह भी है कि रत्नत्रयधर्मकी प्राप्ति भी बिना सन्मार्ग ग्रहण किये नहीं होता है इसलिये सर्वतोभावसे यह सुनिश्चित सिद्ध है कि प्रत्येक आत्माको अपनी उन्नतिके लिये सन्मार्ग पर चलना सब प्रकारसे श्रेयस्कर है।

यहांपर सबको यही एक प्रश्न उपस्थित होता होगा कि 'सन्मार्ग क्या है और उसकी प्राप्तिका क्या उपाय है?'

हमारे आचार्योंने अनन्त जीवोंके उपकारार्थ सन्मार्गका अन्वेषण स्वत अनुभव कर बतलाया है। इतना ही नहीं किंतु उस

सन्मार्गको परीक्षा भी अनेक सुनिश्चित प्रमाणोंसे सिद्ध कर बतलाई है। समस्त ससारी जोवोंके अज्ञानको दूर करनेके लिये सब प्रकार तर्कसे सुनिर्णीत कर निशक मार्ग बतला दिया है।

जिनको आत्मकल्याण करना है। जिनकी काललब्धि समीप आ गई है और जिनका इस पर्यायमें शुभोदय होनेवाला है अथवा जो ससारके भयकर दु खोंसे त्रस्त होकर ससारसे पार होना चाहते हैं, जन्म मरणके दु खोंको जो समूल नाश कर देना चाहते हैं वे सन्मार्गके ग्रहण करनेकी अपनी इच्छा रखते हैं।

सन्मार्ग भव्यजीवोंको ही प्राप्त होता है। क्षयोपलब्धि धारक जीवोंको सन्मार्गका पालन भावोंसे होता है उनके अन्तरभाव सन्मार्गको सर्वोत्कृष्ट आत्महितकारी समझते हैं।

जिस समय जीवको सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है या सम्यग्दर्शनके सन्मुख होता है उस समय भव्यजीवोंको सन्मार्गकी प्राप्ति स्वभावरूपसे होता है। आत्माके परिणाम उस समय अतिशय दयार्द्र हो जाते हैं। हृदय उसका बन्धुत्वभावसे सदैव सस्नेह बना रहता है, वह समस्त जीवोंमें अपने समान समझता है। जैसे—अपनी आत्माको कष्ट दु खकर होता है ठीक वैसे ही वह अन्य समस्त जीवोंमें इसी प्रकार मानता है।

सम्यग्दृष्टी जीव इसीलिये सन्मार्ग पर चलनेके लिये सबसे प्रथम मद्य मास मधु और नवनीत तथा पंच उदम्बर फल विकृतों को यावज्जीव सेवन नहीं करता है। वह समझता है कि इन विकृतों के सेवनसे आत्मा घोर पापमें लिप्त हो जाता है, महा मलिन और नरकादि गतियोंका पात्र बन जाता है।

मूलगुण विचार

शरीरकी रचना और स्थितिमें मुख्य दो कारण हैं। शरीर रचना माता पिताके रज वीर्यसे होती है। माता पिताका जैसा रज-वीर्य होता वैसा ही गुणवाला यह शरीरका पिंड बनेगा और उसके गुण शरीरके अंततक नियमसे रहेंगे। इसका परिणाम (फल) यह होता है कि पिंडकी विकारता और अविकारतासे आत्माके परिणामों (भावों)में विकारभाव और अविकारभाव बना रहता है। जो माता पिताका शरीर दुष्ट रजवीर्यसे उत्पन्न होता है। तो उस शरीरमें स्थित आत्माके परिणाम सदैव दुष्ट बने रहते हैं। और जो माता पिताके विशुद्ध रजवीर्यसे शरीरकी उत्पत्ति है तो उस शरीरमें स्थित आत्माके परिणाम विशुद्ध ही रहते है।

आत्मगुणोंको धारण करनेके लिये जितने अंशमें आत्म परिणामोंमें विशुद्धि होती है उतने अंशमें सन्मार्गमें गमन करनेके लिये आत्माके भाव अतिशय निर्मल रहते हैं और सन्मार्गके प्रति भावोंमें विशेष उत्कर्षता बना रहती है। सदैव उन्नतशील परिणाम बने रहते हैं।

ऐसे जीवोंको सन्मार्गमें गमन करनेमें विशेष आत्मीय आनंद आता है इसलिये वे सन्मार्गमें उच्चकोटि तक गमन कर अपने स्वरूपको प्राप्त कर लेते हैं। परन्तु जिन जीवोंका शरीर पिंड मलिन रज वीर्यसे उत्पन्न हुआ है उनके परिणाम सन्मार्गमें समुत्सुक होते तो हैं परन्तु उन परिणामोंमें शरीर पिंडके गुणोंकी मलिनता—बारबार कायरता, अनुत्साहता और असमर्थताको

प्रकट करती रहती है। फल यह होता है कि ऐसे जीव सन्मार्गकी कोटि तक किसी प्रकार भी नहीं पहुंच सकते हैं और न अपने स्वरूपको प्राप्त कर सकते हैं।

शास्त्रकारोंने ध्यान और चारित्रकी सिद्धिके लिये पिंडशुद्धि पर विशेष अवलम्बन रखा है क्योंकि आत्मपरिणामोंमें विलक्षण शक्तिका प्रादुर्भाव पिंडशुद्धि सपन्न जीवको ही प्राप्त होता है। इसीको कुलशुद्धि और जातिशुद्धिके नामसे आचार्योंने शास्त्रोंमें उल्लेख किया है।

उत्तम कुल और उत्तम जातिका मिलना महान् है इसीलिये आचार्योंने उत्तम कुल और उत्तम जातिका प्राप्त करना मोक्षमार्ग का प्राप्तिके आवश्यक कारण माने हैं।

शरीरकी स्थिति—शरीरका स्थिति आहार पानपर निर्भर है जैसा आहार पान इस शरीरको प्राप्त होगा वैसा ही गुण शरीरके रक्त धातु उपधातु और हृदय आदि स्थानोंमें होगा। इसका फल यह होगा कि जीवके परिणाम भी उस गुणके योगसे वैसे भाव वाले होते रहेंगे।

जो सात्विक पदार्थ सेवन करते हैं उनके परिणाम भी सात्विक, दयाशील और विशुद्ध बने रहते हैं। उनकी वृत्ति निर्दोष और पवित्र बनी रहता है। उनकी बुद्धिमें भी सद्विचार परोपकार दया सुजनता और धर्मानुराग कूट कूटकर भरा रहता है। सात्विक पदार्थसेवी मनुष्य सदैव दयालु रहते हैं वे शत्रु पर भी दया करते हैं और अपनी हानि पहुचाने वाले दुष्ट मनुष्य तियच

पर दया करते हैं और सर्प व्याघ्र आदि क्रूर प्राणियोंके सताये जाने पर कभी भी बदला लेना नहीं चाहते और न हिंसाके बदले प्रतिहिंसा भाव देखना चाहते ।

विशुद्ध—आत्मीय गुणोंका विकाश ऐसे मनुष्योंमें स्वभावसे सरलता पूर्वक प्रकट होता है कि जिनका आहारपान जन्मसे कुल परंपरागत सदाचारके योगसे सात्विक है, मोक्षमार्गकी धारणा ऐसे नररत्नोंके परिणामोंमें दृढतासे वास करता है। परीक्षाके समय वे सब कुछ सहन कर लेते हैं परन्तु अपनी स्वाभाविक दयाका परित्याग नहीं करते हैं। ऐसे अगणित दृष्टान्त शास्त्रोंमें बतलाये हैं कि-सात्विक पदार्थसेवी नररत्नोंने अपनी और अपने कुटुम्बपरिवारके प्राणोंकी आहुति दे डाली है परन्तु असन्मार्ग पर गमन कर अपना स्वाभाविक दयाका भंग नहीं किया है।

दृढ प्रतिज्ञा—सदाचारके प्रभाव-नीतिके वेत्ता सात्विक पदार्थ सेवी नररत्नोंने अपनी बुद्धिको कुमार्गमें कभी भी नहीं लगने दिया ऐसा नहीं है किंतु ऐसे भव्यपुरुषोंकी बुद्धि जबरन (हठात्) कुमार्ग या अनीतिकी तरफ स्वाभाविकरूपसे जाती ही नहीं है। उनके मनमें कभी भी मलिन विचार स्वाभाविकरूपसे उदय नहीं होते हैं।

उनके पवित्र हृदयमें जब जब कोई भी इच्छा स्फुरायमाण होती है तब तब उनकी बुद्धिमें उस इच्छाको सदिच्छा बनानेकी भावना सहसा जागृत होती है और वे भावनाके बलसे उस इच्छा को दयाके रूपमें परणत करते हैं। यह सब सात्विक पदार्थ सेवन करनेका फल है।

सात्विक पदार्थ यदि पवित्रताके साथ आत्मगुणोंकी विशुद्धिके लिये विशुद्ध भावनामें सेवन किये जायँ तो ही वे बुद्धि ज्ञानतंतु, रक्त, धातु, उपधातु और आत्माके परिणामोंमें निर्मलता प्राप्त करते हैं अन्यथा इनमें मलिनताके संस्कारोंसे वह आदर्शता उत्पन्न नहीं होती है।

सात्विक पदार्थोंका सेवन अविवेक पूर्वक किया जाय, बाह्य और आभ्यंतर शुद्धिका विचार नहीं रखा जाय तो अभीष्ट फल जैसा चाहिये वैसा कभी भी सिद्ध नहीं होता है तोभी सात्विक पदार्थका सेवन विवेक या अविवेक पूर्वक कैसेही कियाजाय आत्म परिणामोंमें सौम्यरूपता और दयालुता अवश्य ही प्रकट करता है।

शुद्धिका विचार रखते हुये विवेक पूर्वक सात्विक पदार्थोंका सेवन किया जाय तो आत्मपरिणामोंमें एक विलक्षण प्रकारका अत्यन्त शुभ परिणाम उदित होता है जिससे वह जीव सर्व भावों से विशुद्धताको प्राप्त कर लेता है इतना ही नहीं किंतु दयाका स्रोत उस भव्यजीवके रक्तमें—धातुमें और शरीरके प्रत्येक भाग में निरंतर प्रवाहित होता रहता है। उसके मन और बुद्धिमें ऐसे विशुद्धसंस्कारोंका प्रवाह बहता रहता है कि जिससे उसके आच रण—उसके कर्तव्य और उसके विचार सदैव पुण्यरूप बने रहते हैं। पापोंसे उसको ग्लानि रहती है, हिंसा क्रूरता दुष्टता और नीच व्यवहार को वह दुःखकर मानता है। और सदाचारकी निरवद्य क्रियाओंको सत्यरूप मानता है।

जब तक आत्मपरिणामोंमें सदाचारकी निरवद्य क्रियाओंके

आचरण करनेके भाव जागृत नहीं होते हैं तबतक चारित्रके पवित्र बीज अंकुरित नहीं होते हैं।

चारित्रके बिना जीवनकी आदर्शता किसी कालमें व्यक्त नहीं होती है कितनाही उग्र प्रयत्न किया जाय और अपने कर्तव्य कितने ही सुरम्य बनाये जाय परन्तु उनकी चमक दमक ऊपर दिखावटी ही होगी नीतिमार्ग और सत्यता तक वे कर्तव्य पहुच नहीं सकते। चारित्रके मनोहर अंकुर बिना, समस्त प्रयत्न निष्फल होते हैं। उनमें भावुकता नहीं होता है, सत्यता नहीं ठहरती है। नीतिकी मर्यादा स्थिर नहीं होती है इसोलिये आचार्योंने चारित्रके धारण करनेका आवश्यकता बताइ है और उसकी पात्रता उन आठोंमें बतलाई है जिनके बाह्य और अभ्यतर शुद्धिके साथ सात्विक पदार्थोंका सेवन विवेक पूर्वक होता है।

मद्य–मांस–मधु आदि पदार्थ विरस है। तामस हैं और धातु उपधातु रक्त मांसतन्तु बुद्धि–आदि शरीरके प्रत्येक भागमें क्रूरताको उत्पन्न करनेवाले हैं। जो मद्य—मांस मधुका सेवन करते हैं उनके परिणाम सदैव क्रूर नृशंस रूप रहे हैं।

मद्य—मांस सेवी मनुष्यका खून निरंतर गर्म रहता है। जिससे उसके समस्त शरीरके भाग अतिशय उग्र रहते हैं। हिंसा प्रतिहिंसा करनेके भाव निरंतर बनेही रहते हैं। उनका ज्ञान परिणामोंमें शांति प्राप्त करनेके लिये कितनी ही सफलता प्राप्त करनेका साहस दिखावे परन्तु सफलता नहीं होती है। उनकी बुद्धि सदाचारकी तरफ मनको किसी प्रकार भी प्रेरित करे परन्तु सदा-

चारके भाव अनुरक्ति होते ही नहीं। नीति मार्गकी पवित्रता किसी प्रकार भी धारण कराई जाय परन्तु ऊसर भूमिमें बीजके प्ररोहण के समान सब प्रयत्न व्यर्थ जाता है।

विज्ञान और वैद्यक मतसे भी यह सब प्रकार सिद्ध है कि मद्य मांस मधुका सेवन शरीरके समस्त भागमें दुष्टता उत्पन्न करता है। इस बातकी परीक्षा सब प्रकारसे होचुकी है। बड़े बड़े विज्ञानवादियोंने मांस—मद्य सेवन करनेवाले मनुष्योंके (पशुओंके भी) शरीरके समस्त अवयवोंकी परीक्षायें की हैं। मांस सेवन करनेवाले मनुष्योंने रक्त धातु उपधातु ज्ञानतंतु और स्वभावमें विकारता लानेवाले निर्णीत रूपसे सिद्ध होचुके हैं। प्रत्यक्ष देखनेमें यह सबको अनुभव हो रहा है कि सिंह व्याघ्र आदि पशु और मांस भक्षण करनेवाले नर पिशाचोंके स्वभाव प्रकृतिरूपसे क्रूर और दुष्ट होते हैं। इसी प्रकार मद्यसेवन करनेवालोंकी अवस्था प्रत्यक्षमें विकारित दीखती है।

जब मद्य मांसादि पदार्थ प्रत्यक्ष और परोक्ष सब प्रकारसे ज्ञान, बुद्धि, रक्त, धातु और उपधातुको विकारी करनेवाले एवं आत्मपरिणामोंको मलिन करनेवाले दीख रहे हैं। यह माननेमें किसी प्रकारका संदेह नहीं रहता है कि मद्यमांसादि पदार्थोंके सेवन करनेवालोंकी सन्मार्गमें प्रवृत्ति नहीं होपाती है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति वे मद्य मांसादि छोड़े बिना नहीं कर सकते हैं।

श्री जिनेन्द्रदेवने जिनागममें बतलाया है कि—जो मनुष्य विकारी पदार्थोंका सेवन करता है उसके सम्यग्दर्शन तत्काल ही

नष्ट होजाता है। उसके हृदयमें जैनधर्म धारण करनेकी पात्रता नहीं रहती है उससे परिणाम मोक्षमार्गसे विमुख होजाते हैं। आत्मगुणोंका विकाश ऐसे क्रूरहृदयी मनुष्योंके मनमें नहीं होता है शुभ संस्कार नष्ट हो जाते हैं। मनमें दयाके भाव तिरोहित होजाते हैं तो फिर जैनत्वपनेकी कल्पना किसप्रकार रह सकती है?

चाहे कुल परम्परासे कोई भी जैन क्यों न हो और अपनेको जैनके नामसे प्रकट करता हो तो भी जिसने एकबार मद्यमांसादि निकृष्ट पदार्थोंका सेवन किया कि फिर उसके जैनत्वपनेका सम्बन्ध नहीं रहता है। वह जैन कहलानेका अधिकारी नहीं रहता है। जब वह जैन कहलानेका पात्र नहीं तब उसके मोक्षमार्गका या सम्यग्दर्शनकी कल्पना करना नितान्त असंभव है।

जिस प्रकार मद्यमांसादि पदार्थ विकृत करनेवाले हैं उसी प्रकार पंचफल भी सम्यग्दर्शनको घात करने वाले और आत्म परिणामोंको विकृत करनेवाले हैं। जिसप्रकार मद्यमांसके सेवन करनेमें महान् हिंसा है उसी प्रकार पंचफलोंके सेवन करनेमें भी महान् हिंसा है। इन पंचफलोंको त्रसजीवोंके शरीरका पुंज कहें तो कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है। आचार्योंने पंचफलोंके भक्षणको मांसके समान ही बतलाया है। अनंतजीव त्रसकलेवरके साथ पंचफलोंमें रहते हैं और उनका सेवन आत्मामें महा मलिनता पैदा कर देता है।

पंचफलोंमें त्रसजीव निरंतर उत्पन्न होते ही रहते हैं। प्रत्यक्ष त्रसजीव उड़ते हुए दीखते हैं। और सूक्ष्म त्रसजीव भी असं

ख्यातरूपमें पचफलोंमें रहते हैं। गूलर आदि फलोंमें त्रसजीव उडते हुए सबको दृष्टिगोचर होते हुए दीखते हैं। सूक्ष्मदर्शक यत्र से यदि इन पचफलोंमें सूक्ष्मजीवोंका अवलोकन किया जावे तो जतुओंकी सख्याकी गणना सर्वथा अशक्य हो जायगी।

जिनागममें त्रसजीवोंके कलेवरको मास सज्ञा बतलाई है चाहे वे त्रसजीव अत्यन्त सूक्ष्म हों चाहे स्थूल शरीरके धारक हों परन्तु त्रस-जीवमात्रके शरीरमें मास नियमसे होता ही है। जिन जीवोंको हम नेत्रेन्द्रियसे किसी प्रकार भी देख नहीं सके और जिनका अणुवीक्षण सूक्ष्मदर्शकयत्रसे भी होना अशक्य है ऐसे अत्यन्त सूक्ष्म त्रसजीवोंके शरीर भी मासमें ही गर्भित हैं।

जिन फलोंमें असख्य त्रसजीव निरतर उत्पन्न होते ही रहते हैं ऐसे फलोंका सेवन करना मासभक्षण करनेके समान ही है क्योंकि उन फलोंमें वे सूक्ष्म त्रसजीव किसी प्रकार सजीव अवस्थामें पृथक् किये नहीं जा सके ? कितना ही सरल और सुयोग्य प्रयत्न किया जाय परन्तु उन फलोंमेंसे सूक्ष्म जीवराशि किसी प्रकार भी पृथक नहीं हो सकी है। बल्कि उन फलोंका स्पर्श करते ही वे सू म त्रसजीव सहसा प्राणात हो जाते हैं और उनका कलेवर उन फलोंमें ही रह जाता है। जिससे मासभक्षण का पाप अवश्य ही होता है।

कितने ही ऐसे फलोंमें जैसा फलोंका आभ्यन्तर भाग, रूपरग में होता है ठीक वैसे ही रूपरगके तत्सदृश ही सूक्ष्म त्रसजीव उत्पन्न होते हैं जिससे उनके कलेवरोंका मास फलके भागमें

दृष्टिगोचर होता ही नहीं। अथवा उन जीवोंके कलेवरसे यह फल परिपूर्ण रहता है। इसलिये भी ऐसे फलोंका भक्षण करना मानो मांसका ही भक्षण करना है। इसीलिये ऐसे फल सेवन करनेवालोंके सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता है और जबतक ऐसे फलोंका सेवन परित्याग नहीं होता है तब तक मोक्षमार्गकी पात्रता किसी प्रकार भी प्राप्त नहीं होता है।

पञ्चफलोंका परित्याग किये बिना जैनत्वपना भी सिद्ध नहीं होता है। जब तक मांस भक्षणकी प्रवृत्ति है तब तक जैनत्वपना कैसा? मांसभक्षण करनेवालेके दयारूप परिणाम कब और कैसे हो सकते हैं? बिना दयाके धर्मका स्वरूप किस प्रकार प्रगट होता है। सच्चा जैनी वही है जिसके मांसादि विकारी पदार्थोंके त्यागोंका परित्याग है।

जिसके मांस खानेमें ग्लानि नहीं है, विचार नहीं है उसके पवित्र जैनधर्मकी सद्भावना किस प्रकार स्थिर रह सकती है। बल्कि जो अन्य मांसादि विकृत पदार्थोंका सेवन करनेवाले मनुष्योंके साथ सहभोज करते हैं या उनके हाथके स्पर्शसे अन्न-पान या दूसरे पदार्थ भक्षण करते हैं तो भी उन मलिन संस्कारोंसे पवित्रता स्थिर नहीं रह सकी है।

संस्कारोंका असर बड़ा ही भयानकरूपसे पड़ता है। मांसादि विकृत पदार्थोंके सेवन करनेवाले मनुष्योंके संस्कारोंसे परिणामोंमें बीभत्स भावना नियमसे उत्पन्न होती ही है जिनको नित्य ऐसे संस्कारोंका समागम होता है उनके परिणामोंमें मांसादि

विकृत पदार्थोंमें ग्लानि सर्वथा नहीं रहती है। धीरे धीरे वे मलिन संस्कार परिणामोंको मलिन किये विना नहीं छोड़ते हैं।

आदतका पड़ जाना एक प्रकारसे व्यसनके समान दुःखकर है। जो फल व्यसनोंके सेवन करनेसे होता है उससे कहीं अधिक भयकर कटुक फल आदतसे होता है। यह बात सबको प्रत्यक्ष अनुभवगम्य है।

मांसादि विकृत पदार्थ सेवन करनेवालोंके सहवासमें एकवार भी भोजनपान कर लिया जावे तो जिसप्रकार सफेद वस्त्रमें रंगका दाग एकदम पड़जाता है और वह फिर जाता नहीं है ठीक इसी प्रकार (मांसादि) पदार्थ सेवन करनेवाले मनुष्यके साथ एकवार भोजनपान करनेके संस्कारसे अन्य परिणामोंमें वैसी आदत हो जाती है कि फिर वह दुस्त्याज्य हो जाती है।

व्रतका धारण करना सहज है और सुगमतासे धारण किया जा सकता है। परन्तु व्रतोंको धारण कर निर्वाह करना, व्रतोंका सांगोपांग पालन करना, निर्दोष भावोंसे व्रतकी महिमाको उत्तम समझकर व्रतोंमें किसी प्रकारका दूषण नहीं लगने देना यह कुछ कठिन है और ऐसी अवस्थामें ही व्रतोंका धारण करना सफल समझा जाता है अन्यथा व्रत धारण करना निरर्थक है। इसीलिये आचार्योंने जितना महत्व व्रतकी रक्षा करनेमें और व्रतरक्षाके कारणोंको दिया है उतना महत्व व्रतोंको नहीं बतलाया है। मद्यपेयी, मांसभोजी आदि विकृत पदार्थसेवन करनेवाले नीच कुलोद्भव, मलिन आचरण करनेवाले मनुष्योंके सहवासमें एकवार ही भोजनपानका

संस्कार व्रतोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ हो जाता है। परिणामोंमेंसे व्रतकी महिमाको निकाल देता है। उज्ज्वलताको नष्ट कर देता है और पवित्रभावनाका लोप कर देता है इसीलिये आचार्योंने स्थान स्थान पर सबसे प्रथम यही एक मुख्य आज्ञा प्रदान की है कि—हे भव्यजीवो! जो तुम अपना सत्य और वास्तविक हित चाहते हो तो जिस प्रकार तुमको व्रत धारण करनेकी अभिलाषा है उससे असंख्य गुणी अभिलाषा मलिन संस्कारोंसे अपना रक्षा करनेको तुम रखो। अन्यथा एक बार अंकुरित हुए मलिन संस्कार व्रतोंको तो नष्ट करेंगे ही परन्तु उसके साथ साथ तुम्हारी आत्माके पवित्र भावोंको तत्काल ही नष्ट कर डालेंगे। इसलिये जिन जिन प्रयत्नोंसे उचित समझो उन कठिनसे कठिन अवसरों पर भी मलिन संस्कारवाले-नीच कुलोत्पन्न मद्यमांसादि निद्य पदार्थ सेवन करनेवाले मनुष्योंके सहयोगमें भोजनपानादि व्यवहार प्राणांत होने पर भी मत करो। नहीं तो दीपक हाथमें लेकर कूपमें गिरनेके समान विवेकरहित समझे जाओगे।

मलिन संस्कारवाले, मलिन खानपान करनेवाले, मलिन चिह्नको धारण करनेवाले मनुष्योंके सहयोगके सम्पर्कसे बचानेके लिये आचार्योंने कठिनसे कठिन प्रायश्चित्तकी विधि बतलाई है। जिससे कदाचित कोई भूलसे मलिनताके संस्कारोंसे संसर्गित हो जावे तो वह प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होजावे। जिसप्रकार रोगीको वांति (वमन) कराकर वैद्य निर्मल करदेता है ठीक उसी प्रकार धर्मगुरु प्रायश्चित्त देकर फिर उस भव्यजीवको शुद्ध कर लेते हैं।

यह शुद्धता उन्हीं भव्यजीवोंको होती है कि जिनका मन सरल होता है। पापोंसे जिनको ग्लानि होती है और दयाभाव जिनके अंतःकरणमें लबालब भरे रहते हैं। वेही जीव अपने चित्त की शुद्धिके लिये सरलतासे अपने अपने अपराधोंको प्रकट कर विशुद्धभावोंसे प्रायश्चित्त लेते हैं। परन्तु जिनके मनमें दुष्टता है। जिनेन्द्रभगवानके मतका जिनके श्रद्धान यत्किंचित मात्र भी नहीं है केवल जैनकुलमें जन्म लेनेसे अपनेको जैन कहलानेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु इस प्रकार वास्तविक जैन नहीं होते हैं।

जो लोग जैनकुलमें अवतार लेकर ऐसे देशमें गमनागमन करते हैं कि जहांपर नित्यप्रति मद्य मांसभोजी और म्लेच्छ मनुष्योंके हाथका भोजनपान करना पडता है और उन बर्तनोंमें उन्हीं लोगोंके सहयोगसे अशुद्ध और मर्यादारहित भोजनपान करते हैं। उनका जैनपना किस प्रकार स्थिर रह सक्ता है? और कब उनके निर्मल मोक्षमार्ग पूर्ण रह सका है एवं उनके सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि किस प्रकार रह सक्ती है?

अज्ञानका माहात्म्य सर्वोपरि होता है, अज्ञानमें अहंकारता ठूंस ठूंस कर भरी होती है, अज्ञानकी अहंकारता कहींपर भी शांत नहीं होती है। इसलिये अज्ञानी सहसा मदोन्मत्त, हठीले और वाचाल हो जाते हैं। अज्ञानी या कुशिक्षाके प्रभावसे जिनका ज्ञान मिथ्यारूप परणमन हो गया है ऐसे तीव्रतर अज्ञानी मनुष्य ऐसे देशोंमें गमनागमन करते हैं जहांपर सर्व प्रकारसे भ्रष्टता-बुद्धि और चरित्र पर सवार हो जाती है और म्लेच्छ मनुष्योंके

संपर्कसे निष्पन्न हुआ अभक्ष्य एवं अग्राह्य भोजनपान करना पड़ता है। ऐसे अज्ञानी जीवोंका स्वभाव ही प्राय ऐसा होता है कि वे सत्य विचार करनेमें सर्वथा असमर्थ हो जाते हैं अथवा अतिशय विषय लोलुपता उनके मनको इतना कायर बना देती है कि सत्यासत्य विचार उनकी गर्वित बुद्धिमें ठहरता ही नहीं है। परन्तु फिर भी अज्ञानका दुराग्रह उनकी आत्माको इतना पतित कर देता है कि उनके आत्मीय परिणामोंमें सरलता सर्वथा नष्ट हो जाती है कि जो धर्मका अङ्कुरस्वरूप है। इसलिये वे प्रायश्चित्तादि लेकर पुन अपनी आत्माको पावन करना नहीं चाहते हैं।

सम्यग्दर्शन आत्माका विशुद्ध परिणाम है। उसका स्वाद ढोल बजानेवालेको नहीं होता है। भगवान वसुनन्दी आचार्यने ऐसे देशोंमें गमन करनेका निषेध करते हैं, जिस देशमें मद्यमांसादि पदार्थोंके संपर्कसे बचना सर्वथा असंभव हो। वहांपर सम्यग्दर्शन किसी प्रकार भी स्थिर नहीं रह सकता है। अस्तु।

सम्यग्दर्शनकी विशुद्धिके लिये आचार्योंने मनकी सरलता और निर्मलता विशेष उपयोगी बतलाई है। मलिन और अभक्ष्य पदार्थोंके संपर्कसे सेवन किया हुआ अन्नपान आत्मपरिणामोंमें सरलता और निर्मलता सर्वथा होने नहीं देता है। मलिन अन्नपानके संस्कारका ऐसा ही विलक्षण स्वभाव है।

मुनिराज अपने सम्यग्दर्शनकी विशुद्धिके लिये सबसे प्रथम ऐसे मलिन संस्कारोंसे उत्पन्न हुये अन्नपानका परित्याग करते हैं। एषणा समितिमें ऐसे मलिन संस्कारसे उत्पन्न हुये अन्नपानका सेवन करनेवालेको मिथ्यात्वी बतलाया है।

सूर्यप्रकाश ग्रन्थमें--बतलाया है कि मलिन संस्कारों और मद्यमांसादि विकृत पदार्थोंका सेवन करनेवाले मनुष्योंके (साथ) सहयोगमें भोजनपान करनेसे गृहस्थोंका सम्यग्दर्शन तत्कालही नष्ट होजाता है। सन्मार्गपर गमन करनेके इच्छुक भव्यजीवोंको सबसे प्रथम ऐसे अपवित्रताका परित्याग करना चाहिये। क्षेत्रकी रक्षाके लिये जिस प्रकार नरवाड विशेष हितकर होती हैं ठीक इसी प्रकार आठ मूलगुण धारण करनेवाले भव्यात्माको सन्मार्गकी प्राप्तिके लिये और सम्यग्दर्शन विशुद्धिके लिये ऐसी मजबूत बाड लगानी चाहिये कि जिससे आत्मपरिणामोंमें मलिनता--शरीरके रक्त, धातु, उपधातु आदि भागोंमें दुष्टता और विकारता अपना अधिकार सर्वथा नहीं जमा लेवे?

शत्रुके समान जरासे छिद्रमें होकर मलिनता आत्मपरिणामोंको मलिन कर देती है। यह बात सबको प्रत्यक्ष है वैद्य रोगको भयंकर नहीं मानते हैं किंतु कुपथ्य और बाह्यके मलिन साधनोंको अतिशय भयंकर प्राणांत करनेवाले मानते हैं। मलिन हवा भी विशेष मनुष्यको दुःखकारी होती है। इसी प्रकार बाह्यके मलिन संस्कार और मलिनताके उत्पादक कारण नीच मनुष्योंके संसर्ग मांसादि विकृत पदार्थोंके समान ही आत्म परिणामोंमें मलिनता करनेवाले हो जाते हैं। इसलिये आत्मपरिणामोंकी विशुद्धिके लिये बाह्य कारण कषायोंसे होनेवाली मलिनताका जिस भव्यात्माके पूर्ण विचार रहता है उसके आठ मूल गुणोंका पालन नियमसे होता है। और उसके ही सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि स्थिरतासे रहती है।

मांस विचार और खुलासा

मांस त्रिकलत्रय और पंचेन्द्रिय जीवके कलेवरसे उत्पन्न होता है। मांसको प्रायः सब जानते हैं। मांसकी उत्पत्ति विना जीव हिंसाके किसी प्रकार भी होती नहीं है। मांसका सेवन वैद्यक दृष्टिसे खून और धातुमें विकारताका उत्पादक माना है, मांसमें मूगफली, घी, दूध गेहू और फलोंके बराबर शक्ति नही है। सबसे अधिक पौष्टिक मूगफली है। विज्ञानवादियोंने मांसमें पौष्टिक सत्व मूगफलीसे आधा भागमें बतलाया है तथा घी, दूध आदि पदार्थोंमें भी पौष्टिक सत्व भाग मांससे अधिक है। यदि मांसमें-से समस्त पदार्थोंका पृथक्करण किया जाय तो पौष्टिक अंश घी, दूधके बराबर नहीं होता है। विज्ञानवादियोंने रुराकके समस्त पदार्थोंको पृथक्करण कर अपना निश्चित सिद्धान्त प्रकट कर दिया है कि —'मांसका सेवन पौष्टिताके लिये घी, दूध, मूगफली आदिके समान उपयोगी नहीं है।'

मूगफलीमें पौष्टिक अंश ९० , घीमें ८०, दूधमे ७० और मांसमें ६५ अंश है। गेहू और फलोंमें पौष्टिक अंश ६० और ८० अंशमें है।

घी-दूध-फल आदि जैसे सात्विक पदार्थ हैं वैसा मांस सात्विक नहीं है। मांस तामस है, क्रूरताका उत्पादक है। प्रकृतिकी दृष्टिसे मिलान किया जावे तो व्याघ्र-सिंह-मगर-मार्जार (बिल्ली) आदि जीव जंतु जो मांस ही भक्षण करते हैं उनके दांत और मुंहके अवयव मनुष्य गाय घोडा-बकरी-आदि निरामिष भोजियोंके

समान नहीं होते हैं। मांस भक्षण करने वाले जीवोंके दांत धाके नुकाले और मिथीवाले होते हैं। निरामिष भोजियोंके दात मिथीवाले और धाके नहीं होते हैं। मास भक्षण करनेवाले जीवों' का स्वभाव क्रूर होता है। एकात और अधकारसे उन्हें अधिक प्रेम होता है निरामिष भोजियोंका यह स्वभाव नहीं होता है।

शास्त्रकारोंने मांसभोजी जीवोंके सम्यग्दर्शनका अभाव बतला या है। जिन व्याघ्र-सिंह आदि जीवोंके सम्यग्दर्शन प्रकट होता है उनकी स्वाभाविक वृत्ति मासादि पदार्थोंसे विरक्त हो जाती है। परिणामोंमें स्वाभाविक रूपसे शांतिता प्रकट हो जाती है। यद्यपि मनुष्य पर्याय सर्वोत्कृष्ट है और सदाचारकी मात्रा सर्वोत्कृष्टरूपसे मनुष्य पर्यायमें ही प्राप्त होती है। इसीलिये प्रकृतिसे मनुष्य पर्यायके लिये नियम उपनियम और सदाचार धारण करनेकी विधि उपविधि आदि अन्य समस्त पर्यायोंसे पृथक् रूप बतलाये गये हैं। मनुष्य पर्यायमें समस्त संस्कार यथाक्रमसे नियमितरूपसे पालन किये जाते हैं, जिन पर्यायोंमें संस्कारोंकी पूर्णता नहीं है उन पर्याय वाले जीवोंके मोक्षमार्गकी पूर्णता नहीं होती है। बल्कि मोक्षमार्गका प्रारंभभी यथावत नहीं होता है।

मनुष्य पर्यायमें सन्मार्गके प्रारंभका विधिक्रम इस प्रकारसे प्रारंभ होता है कि—जिससे आदिसे अतपर्यंत मोक्षमार्गका सिद्धि यथाक्रमसे नियमितमें सिद्ध होती जाती है। मनुष्यपर्यायमें सब प्र कारका विवेक है विचार है और सब प्रकारकी ऐसी विलक्षण यो ग्यता है कि जिससे मनुष्य अपना मोक्षमार्गका विधिक्रम अन्य

पर्यायोंसे सर्वोत्कृष्ट रखता है इसलिये मनुष्यमें मद्यमांसादि विका री पदार्थोंका परित्याग अन्य समस्त पर्यायोंकी अपेक्षा भिन्नरूपसे किया जाता है।

व्रतोंके धारण करनेके प्रथम ही अतिक्रम-व्यतिक्रमादि दोषों का दिग्दर्शन कराया जाता है और उससे रक्षा करनेके लिये पूर्ण रूपसे सावधानी कराई जाती है। मनकी असावधानता, विषयोंकी लंपटता, विचारोंकी चपलता पर पूर्ण ध्यान रखना पडता है। उक्त कारण कलापोंसे व्रतोंमें अतीचार आदि दोषोंकी संभावना नियम से बनी रहती है। इसी प्रकार वचन और शरीरकी असावधानी से भी व्रतोंमें अनेक प्रकारके दूषण स्वयमेव उत्पन्न हो जाते हैं उन सबसे रक्षा करनेका मार्ग इस मनुष्य पर्यायमें बतलाया जाता है। भवकोटिकी विशुद्धतासे यदि व्रतोंका पालन होता है तो एक मनुष्य पर्यायमें ही होता है इसलिये मनुष्य-पर्यायमें मांसादि वि कारी पदार्थोंके परित्यागमें यह सबसे प्रथम ध्यान देना पडता है कि मेरा व्रत किन किन कारणोंसे निर्मल रह सकता है, और किन किन कारणोंसे व्रतोंमें दूषण आते हैं।

जिस प्रकार नीच मनुष्य (जिसने यहा मांसादि निकृष्ट पदार्थ खानेकी स्वाभाविक कुलपरंपरासे प्रवृति है) के संसर्गसे मांसादि निकृष्ट पदार्थोंका परित्याग करनेवाले भव्यजीवके भयंकर दूषण आते हैं। उसी प्रकार अन्य कारणोंसे भी दूषण उत्पन्न होते हैं उन सबका विचार अवश्य ही करना चाहिये।

(१) मर्यादा रहित आटा, सडा हुआ पदार्थ, जीव जंतु सहित

फल, बिना छाना पानी, मास और चर्बीसे बनी हुई दवायें, अधिक दिवसके अचार, चर्मके पात्रमें रखे हुये पानी, घी, तेल, आदि अनेक प्रकारसे त्रसजीवोंके कलेवर (मास) मिश्रित पदार्थोंका सेवन करनेसे मास सेवनके समान ही दूषण प्राप्त होता है।

आटा, चूर्ण, और इसी प्रकारके बहुतसे पदार्थ हैं कि जिनमें कुछ समय (काल) के बाद त्रसजीव स्वभावरूपसे पड जाते हैं और उनका प्रत्यक्षपना कभी कभी सबको होता है, चातुर्मासमें तो अधिकतासे जीवोंकी उत्पत्ति होती है और वह सबको प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती है। बहुतसे जीव चलते फिरते मर्यादा रहित पदार्थमें सबको प्रत्यक्ष दीखते हैं। इसलिये ऐसे पदार्थोंका सेवन विचार पूर्वक करना चाहिये।

हलदीकाचूर्ण मिरचकाचूर्ण आदि पदार्थोंमें चातुर्मासमें अगणित जीवराशि प्रत्यक्ष दीखती है ऐसे पदार्थोंको किसी प्रकार भी शोधन किया जाय तो जीवोंके मरे बिना शोधन किसी प्रकार नहीं होता है। इसलिये मर्यादाके अदर ही उनका सेवन करना लाभदायक है।

कितने ही ऐसे पदार्थ होते हैं कि उनमें अतिशय सूक्ष्म जीव (त्रस जीव) उत्पन्न होते हैं जो नेत्र इन्द्रियमें किसी प्रकार किसी समयमें दृष्टिगोचर नहीं होते हैं परतु उनमें अनंतजीवोंकी सत्ता नियमसे रहती है सर्वज्ञ प्रभुने अपने ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष देखी है। और स्थूल रूपसे सूक्ष्मदर्शक यन्त्रादिकोंसे नेत्र इंद्रियसे प्रत्यक्षता होती है। इसलिये आगमकी श्रद्धासे उन पदार्थोंके सेवनका परि

त्याग अवश्य ही करना चाहिये अन्यथा मांस सेवन करनेका दूषण नियमसे प्राप्त होगा।

अचार, मुरब्बा, और मर्यादा रहित अवलेह आदि पदार्थोंमें अनंत त्रसजीवोंकी सत्ता नियमसे रहती है। मर्यादा रहित दाल भात आदि पदार्थोंमें त्रसजीवोंकी सत्ता रहती है इसलिये मांसके परित्यागीको इन सब पदार्थोंके सेवन करनेमें विचार करना चाहिये।

सड़े हुये पदार्थोंमें त्रसजीव कभी कभी तो प्रत्यक्ष अनुभव होते हैं और कभी कभी प्रत्यक्ष नहीं होते हैं परन्तु उनमें अगणित सूक्ष्मजीव नियमसे रहते हैं। गेहूं चना मूंग आदि पदार्थोंमें घुनजानेसे भी त्रस उत्पन्न होते हैं। बासे और फफूंदे पदार्थोंमें त्रसजीव कभी कभी चलते फिरते प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। खरबूजा आदि फल सड़जाने पर सफेद जीव उनमें बहु संख्यामें उत्पन्न हो जाते हैं और उनका कलेवर खरबूजाके रंगकासा ही होता है परन्तु बारीकीसे देखा जावे तो स्पष्ट जैसे जाय चलते दृष्टिगोचर होंगे।

पानी छाननेके बाद दो मुहूर्त अथवा चार—घड़ी पीछे त्रस जीव नियमसे उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये पानीको वारवार छानकर ही उपयोग करना चाहिये।

पानी छाननेमें सबसे अधिक सावधानी रखना चाहिये। जैसा पानी छानने में लाभ है उससे अधिक लाभ पानीकी जीवानी कुआमें पहुंचानेमें है। जो भाई पानी छान तो लेते हैं परन्तु

जीवानीका बिलकुल ही विचार नहीं करते हैं। वे बहुत भूलमें हैं। उनसे त्रसजीवोंकी रक्षा सर्वथा नहीं होती है।

पानीको जितनी बार छाना हो उतनी वारकी जीवानी एक वर्त्तनमें जमा करता जावे और दूसरे दिवस उसको कूवामें जहांकी तहां सभाल कर पहुंचा देवे।

यत्नाचार पूर्वक पानी छानना चाहिये पानी छाननेका वस्त्र सुदृढ और दुहरा होना चाहिये। जितना विवेक पानी छाननेमें रखा जायगा उतना ही मांसादि सेवनके अतीचारसे बचना होगा।

इसी प्रकार घी तेल पानी चामके सयोगसे त्रस जीवोंका घर बन जाते हैं, पदार्थोंके सयोगमें यह विलक्षण शक्ति स्वयमेव उत्पन्न होती है। सयोगसे बहुतसे पदार्थोंमें इस प्रकार जीव राशि उत्पन्न होती हैं, विदलमें भी सयोगसे त्रसजीव उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार घी तेल पानी और द्रवीभूत रस चर्ममें रखा जाय तो चर्मके सयोगसे बहुतसे त्रसजीव स्वयमेव उत्पन्न हो जाते हैं। प्रायः सम्मूर्छन जीव ऐसे साधारण निमित्त मात्र मिलनेपर स्वयमेव उत्पन्न हो जाते हैं। चर्मका सयोग सम्मूर्छनजीव उत्पन्न होनेका निमित्त कारण है।

हींग आदि पदार्थ भी चर्ममें रसरूप होकर आते हैं। कभी कभी कच्चे चाममें हींग आदि पदार्थ रखकर आते हैं तो उसमें उसी जातिके सूक्ष्म त्रसजीव उत्पन्न होते हैं जो नेत्र इन्द्रियसे दृष्टि गोचर कदापि नहीं होते हैं।

विदल—कच्चा दूध और कच्चा दही और कच्चे दूधके जमाये

हुए दहीका छाछके साथ साथ जिस अन्नके दो भाग सम रूपमें हो जायें ऐसे दाल आदि पदार्थका सेवन करनेसे लारके संयोगसे प्रत्यक्ष जीव उत्पन्न होते हैं। जिनको इस विषयमें संदेह हो वे कच्चे गोरसके साथ दाल आदि पदार्थ मुहमें रखकर एक क्षण बाद थूक देवें तो उस वमनमें त्रसजीव चलते फिरते प्रत्यक्ष दीखेंगे। हीतरके खानेवाले इस प्रकार जीवोंको उत्पन्न करते हैं।

कुछ पदार्थोंमेंसे त्रसजीव किसी भी प्रकार दूर नहीं होते हैं गोभीका फूल, नागका फूल, केउड़ाका फूल आदि पदार्थोंमें मिठास और सुगंधीके कारण अनंत जीव उनपर अपना वास करते हैं। उनको दूर करनेमें अतिशय कठिनता होती है बल्कि कभी कभी तो वे किसी प्रकार दूर किये नहीं जा सकते चाहे कितना ही यत्नाचार पूर्वक रक्षा की जावे परन्तु जीवहिंसा हुवे बिना कदापि रहती नहीं है।

जो पदार्थ अन्दरसे पोले हैं, मीठे हैं, सुगंधी वाले हैं उनमें त्रस जीव स्वयमेव वास करते हैं। कमलकी नालमें ऐसे अगणित त्रस जीव नालकी पोलानमें भरे रहते हैं जो यत्नाचार पूर्वक कार्य करने पर भी दूर नहीं हो सके हैं। इसी प्रकार छोटे बेर (फाड़े बेर) की पोलानमें त्रसजीव वास करते हैं।

कितनी ही औषधी मास चर्बीकी खासकर बनाई जाती है मछलीका तेल जो पौष्टिक दवाके लिये भरों बिकता है जिसको कोडलीवर आयल कहते हैं ऐसी अनेक औषधी हैं जो मासके द्वारा ही खास तैयार कराई जाती हैं। चाहे वे देशी हों—चाहे परदेशी

हों परन्तु ऐसी औषधियोंका सेवन करना साक्षात् मांस खाना है।

जिस प्रकार फल फूल कंदमूल पानी आदि पदार्थ अग्नि पर पकाने पर अचित्त हो जाते हैं, परन्तु वैसे मांस किसी प्रकार भी अचित्त नहीं होता, मांसका अचित्त होना तो असम्भव है। परन्तु मांसको कितना ही अग्नि पर पकाया जाय तो भी उसमें अनंत त्रसजीव मांसके शरीरके समान वैसे ही रूप रंग और गुणके धारक (तज्जातीय) निरंतर उत्पन्न होते ही रहते हैं। इसलिये मांस किसी भी अवस्थामें शुद्ध भक्षण करने योग्य नहीं होता है और न किसीप्रकार उसका सेवन करनेवाला जीवहिंसाका परित्यागी होता है।

मांसके सेवन करनेवाले एक यह तर्क करते हैं कि हम मांसको बाजारसे खरीद कर ले आते हैं, स्वयं जीवोंकी हिंसा कभी नहीं करते फिर हमको जीवहिंसा संबंधी पापास्रव कैसे होगा? परन्तु यह उनकी भूल है सर्वज्ञ प्रभुके ज्ञानमें मांसमें निरंतर सूक्ष्म त्रसजीव उत्पन्न हुये प्रत्यक्ष दीखते हैं। यद्यपि वे जीव नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्ष नहीं हैं परन्तु विज्ञानसे जीवोंकी सतत उत्पत्ति सिद्ध होती है। इसी प्रकार सूखे (शुष्क) मांसमें निरन्तर जीव उत्पन्न होते ही रहते हैं। मांसकी ऐसी कोई भी अवस्था नहीं है कि जिसमें जीवोंका उत्पन्न होना बंद हो गया हो। इसलिये मांस खानेवाले जीवोंको एक-मोटा पशु [illegible] न आया हो जिससे उनकी यह धारणा

हो रही है कि हम जीवहिंसा कम करते हैं परन्तु जब मासमें प्रत्येक अवस्थामें निरन्तर अनंत जीव मासही की पर्यायको धारण करनेवाले उत्पन्न होते ही रहते हैं तब किस प्रकार यह माना जा सका है कि मास खानेवाले हिंसाके भागी नहीं हैं और न उनसे जीवहिंसा होती है? मास खानेवाले जीवोंको नियमसे जीवहिंसा होती ही है।

कितने ही यह तर्क करते हैं कि जिस प्रकार मास जीवोंका शरीर है ठीक उसी प्रकार अन्न फल दाल भात आदि पदार्थ भी तो जीवके शरीर हैं और फिर इसका भक्षण करना मास भक्षण करना क्यों नहीं कहा जावे? इस तर्कका बारीक रूपसे विचार किया जाय तो प्रत्येक विचारशील व्यक्तिको यह बात सहजमें अनुभवमें आजाती है कि अन्न फल दाल भात आदि पदार्थोंसे मास सर्वथा भिन्न है। मासमें जो बातें पाई जाती हैं वे बातें अन्नादि पदार्थोंमें सर्वथा नहीं हैं। मास सर्व अवस्था में दुर्गन्ध पूर्ण है। अन्नादिक वैसे नहीं हैं। मास रक्त धातु उपधातुसे परिपूर्ण है अन्नमें रक्त धातु उपधातु रस पेशी मज्जा हाड आदि भाग सर्वथा नहीं होते हैं। अन्नमें रक्तादि धातुओं का सद्भाव नहीं होनेसे निरन्तर जीवराशि उत्पन्न नहीं होती है। परन्तु मासमें रक्त धातु उपधातु होनेसे निरन्तर जीवराशि उत्पन्न होती ही रहती है। अन्नादि पदार्थ स्वयमेव (शुष्क) सूख जाते हैं परन्तु मासको सुखानेके लिये कुछ न कुछ प्रक्रिया करनी पडती है। तो भी योग्यरूपमें वह शुष्क नहीं होता है। निरन्तर

किन्त बना ही रहता है। मास, त्रसजीवका कलेवर है। त्रसोंके सहनन होता है इसलिये उनका शरीर मास होता है परन्तु गेहू धान्य आदि एके द्रियके शरीर है, उनमें सहनन नहीं होता है इस लिये उनका शरीर मास नहीं कहा जा सक्ता, जहा सहनन होता है वहीं पर रक्त मज्जा हड्डी आदि बनते हैं।

मासका सेवन करना क्रूरताका कारण है परन्तु अन्नादि पदार्थका सेवन करना सात्विकताका कारण होता है। मासमें प्रत्यक्ष ग्लानि है अन्नमें नहीं। मासमें प्रकृतिके विरुद्ध कारण कलाप रहते हैं, वे कारण कलाप अन्नादि पदार्थमें नहीं होते हैं। यदि विज्ञानसे मासका पृथक्करण कराया जाय तो मासमें अन्नकी अपेक्षा भिन्न स्वरूपता प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर होगी।

यद्यपि वनस्पतिमें जीव है और उसका कलेवर ही अन्न दाल भात है तो भी वनस्पतिमें रक्तादि धातुओंका सद्भाव नहीं है जिससे अन्नादिक वनस्पतिका कलेवर होने पर भी उसमें मासपना नहीं सिद्ध होता है। जिसप्रकार नीव वृक्ष हो सक्ता है परन्तु वृक्षमात्र नीव नहीं हो सकता ऐसी व्याप्ति बन नहीं सकी है ठीक इसी प्रकार अन्नादिक जीवके कलेवर तो कहे जा सकते हैं परन्तु समस्त जीवोंके शरीरको मास कहें ऐसी व्याप्ति नहीं बनती है। इसलिए यह तर्क उपयोगी नहीं है कि जिस प्रकार मास जीवका शरीर है उसी प्रकार अन्नादिक भी जीवके शरीर होनेसे मास है। जैसे माता भी स्त्री है और स्त्रीभी स्त्री है स्त्रीपना दोनों जगह समान है फिर भी भोग्य स्त्री होती है माता नहीं होती।

दूध और रक्त एक शरीरमेंसे एक स्थानमें ही उत्पन्न होता है परन्तु दूध और रक्त दोनों एक रूप नहीं हो सके। ठीक इसी प्रकार यद्यपि अन्न और मास—जीवके कलेवर होनेसे ऐसी तर्क होती है कि अन्न और मास एक ही होंगे। परंतु वस्तुस्थिति से विचार किया जाय तो मास और अन्नमें बहुत ही भेद है। अन्न किसी प्रकार किसी अवस्थामें मासरूप नहीं हो सका है? क्योंकि वनस्पतिशरीरमें सूखने पर जीवोत्पत्ति भी नहीं होती है मासमें निरंतर जीवोत्पत्ति होती रहती है यह पूर्ण रूपमे सूखते भी नहीं।

जिस प्रकार दूध कच्चा (बिना गरम किया हुआ) पीने पर मानव जीवनमें हानि नहीं पहुचाता। उसी प्रकार फल और कोई कोई विशेष अन्न कच्चे खाने पर हानि नहीं पहुचाते हैं। परंतु मानव जीवनमें कच्चा मासका सेवन किसी प्रकार नहीं हो सका है इसलिये भी मास और अन्न फलादिक भिन्न भिन्न हैं और उसके लिये यह तर्क करना कि जिसप्रकार मास जीवोंका शरीर है उसी प्रकार अन्नादिक जीवोंका शरीर है इसलिये अन्नादिक भी मास है। यह तर्क किसीप्रकार सत्य और यथार्थ नहीं हो सका है।

जिस प्रकार मासके अतीचार और दूषण अनेक प्रकारसे होते हैं ठीक उसी प्रकार मद्य सेवन करनेमें बहुत विचार करना चाहिये।

मद्य सेवन करनेवाले मद्य विचार भव्यजीवोंको अर्क आदि पदार्थ नहीं सेवन करना चाहिये। जो पदार्थ सड़ाकर गलाकर एवं निचोड़ कर जो रस तैयार किया जाता है उसको मद्य अथवा

मद्य कहते हैं। पदार्थोंके सडानेमें अनन्त जीवराशि उत्पन्न होती है और सडानेमें वे जीवराशि मर जाते हैं। मद्यके तैयार करनेमें अनन्त-जीवोंकी हिंसा होती है। चाहे किसी रूपसे मद्य तैयार कराया जाय परन्तु जीवहिंसा बिना मद्य किसी प्रकार भी तैयार नहीं हो सका।

जीवहिंसाके सिवाय मद्यमें मादक शक्ति होती है जिसके सेवन करनेसे आत्माका गुण नष्ट होजाता है। ज्ञानगुणका नष्ट होना साक्षात् जीवहिंसा है। मद्यपान करनेवाले जीवोंको स्वरूपका प्राप्ति होना दुरसाध्य है।

यद्यपि प्राणोंके वधको जीवहिंसा कहते हैं, किसी जीवके द्रव्य प्राणोंका नाश करना सो हिंसा है। परन्तु यह द्रव्यहिंसा है इससे तीव्रतर हिंसाभाव प्राणोंके नाश करनेमें है। भावप्राण ज्ञान दर्शन है। ज्ञानदर्शनका नाश करना भावप्राणोंका नाश करना है, भाव प्राणोंकी हिंसा मानसिक दुःखको अतिशय बढानेवाली है। शारीरिक दुःखोंकी अपेक्षासे मानसीक दुःख अतिशय भयकर हैं। भावप्राणोंकी हिंसा मादक पदार्थोंके सेवन करनेसे प्रत्यक्ष होती हैं। मदिरापान करनेवाले जीवोंका ज्ञान (होस हवास) सब नष्ट हो जाता है, बुद्धिका लोप होजाता है। ज्ञानके बिना बेहोशी प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती है इसलिये मदिरापान हिंसाका कारण तथा हिंसारूप ही हैं। मदिरापानसे द्रव्य और भाव प्राणोंका नाश प्रत्यक्ष है।

जिस प्रकार मदिरा तैयार करनेमें घोर हिंसा है असख्यात

जीवोंका वध एक साथ होता है उसी प्रकार मदिरापान करनेवाले मनुष्योंके भावप्राणोंका घात होनेसे घोर हिंसाका कारण है। मदिरापान प्रत्येक अवस्थामें हानिप्रद है।

एक बात यह भी है कि जिस प्रकार मांसमें निरंतर सूक्ष्म त्रस जीव उत्पन्न होते हैं ठीक उसी प्रकार सूक्ष्म त्रसजीव मदिरामें भी निरंतर होते हैं। इसलिये मदिरापान एक प्रकारसे मांसभक्षण करनेके समान है।

जिन पदार्थोंमें निरंतर सूक्ष्म त्रस जीव उत्पन्न होते रहते हैं उनका सेवन करना मांसका सेवन करना ही है, ऐसा न समझना चाहिये कि मदिरामें उत्पन्न होते हुए जीव दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। सर्वज्ञ प्रभुके केवल ज्ञानमें मदिरामें निरंतर जीव उत्पन्न होते हुए दृष्टिगोचर हैं आगममें ऐसा ही प्रभुने बतलाया है।

मदिराका त्याग जीव हिंसाकी दृष्टिसे तथा मादकताकी दृष्टिसे किया जाता है परन्तु जिन पदार्थोंमें जीव हिंसा तो नहीं है परन्तु मादकता बराबर है ऐसे पदार्थोंका सेवन करना भी मदिरापानके समान ही माना जाता है, आत्माके भाव प्राणोंका ये पदार्थ नाश करते हैं, जिस प्रकार मदिरा अनेक पदार्थोंको सड़ाकर गलाकर बनाई जाती है और उन पदार्थोंके सड़नेमें असंख्यात जीवोंका विध्वंस होता है इस प्रकार भांग गांजा अफीम कोकेन चर्स आदि पदार्थ सड़ाकर नहीं बनाये जाते हैं जिससे उनके तैयार करनेमें असंख्यात जीवोंका वध हो, परन्तु इन पदार्थोंमें मदिराके समान सेवनके अतीचार व दूषण अवश्य ही प्राप्त होते हैं।

प्राणातकारी पदार्थोंका सेवन करना भी मदिराके अतीचारों का उत्पादक है। विष आदि पदार्थोंका सेवन व्यसन और भोग विलास आदिके लिये किया जाय तो वह मदिरा सेवनके समान दूषणास्पद है। इसी प्रकार मोहनीचूर्ण मूर्च्छा लाने वाले चूर्णों का सेवन करना व्रतमें दूषण प्रदान करने वाला है। और जो लोग दूसरोंको मारनेके खास इरादेसे विषपान करते हैं कराते हैं वे हिंसक पापी हैं, उनका भाव व्रत पालन करनेका नहीं होता है किंतु आत्मघात करनेका होता है।

संसारमें सबसे भयंकर पाप आत्मघात करनेमें है, आत्महत्या के समान अन्य कोइ भी पाप नहीं है, जो लोग अविचारसे या क्रोधादिकके निमित्तसे आत्मघातादि करनेके लिये विष प्रयोग करते हैं, वे धर्म मार्गसे विमुख हैं, विवेक शून्य है, नराधम हैं, आत्महत्यामें कभी भी धर्मभावना नहीं होती है।

जिन औषधियोंमें मदिराका सबंध होता है या मदिराका समिश्रण होता है, मदिरा त्याग करनेवाले भव्यात्माओंको ऐसी औषधियोंका सेवन करना हानिप्रद है।

यद्यपि ऐसी औषधियोंका सेवन मौज मजाके लिये नहीं किया जाता है जिस प्रकार मदिराका सेवन मौजमजाकी प्राप्तिके लिये भोगविलासोंकी सिद्धिके लिये और कामादि व्यसनोंको उत्तेजन देनेके लिये किया जाता है उस प्रकार औषधोंमें मदिरापान सेवन नहीं किया जाता है तो भी मदिराके सबधसे वे औषधी शरीरके रक्त धातु उ[illegible] विकार उत्पन्न करता है कि

जिससे मदिरा सेवनके समान ही फल प्राप्त होता है, और जीव हिंसा अवश्य ही होती है।

ऐसी औषधियां शरीरमें अपना घर बना लेती हैं, जिसने एक बार भी मदिरा मिश्रित औषधी सेवन की फिर उसका कोठा ऐसा होजाता है कि मदिरा आदि पदार्थोंके सेवन करनेमें ग्लानि नहीं रहती है, जिससे बारबार औषधीरूपमें मदिर लेना पडता है इस लिये मदिराका परित्याग करने वालोंको ऐसी औषधीका सेवन विचार पूर्वक करना चाहिये।

अर्क आदि पदार्थोंमें मादक शक्ति नहीं होती है परन्तु उनकी उत्पत्ति और उनका स्वरूप मदिराके समान ही होता है, जितनी जीवहिंसा मदिराके बनानेमें होती है उतनी ही जीव हिंसा अर्कादि पदार्थोंके बनानेमें होती है, मदिरामें जिस प्रकार निरंतर जीवोंकी उत्पत्ति होती रहती है अर्कादि पदार्थोंमें उसी प्रकार जीवोंकी उत्पत्ति होती रहती है इसलिये जीवहिंसाकी दृष्टिसे अर्कादि पदार्थोंका सेवन करना दूषणास्पद है।



मधु विचार

शहत (मधु) की उत्पत्ति किस प्रकार होती है यह सबको विदित ही है। छोटेसेछोटा बालक मधुकी उत्पत्तिको जानता है। मधु मक्षिकाके छत्तोंसे निकलता है। मक्षिकाके छत्तोंमें असंख्य अंडा और छोटी २ मख्या गूढ़गर्भके समान छत्ताओंके अंदर रहती हैं। मधु निकालनेकेलिये दुष्ट मनुष्य मक्षिकाके छत्ताके नीचे धूआ करते हैं। धूआ) मक्षियोंको सर्वथा सहन नहीं होता है। जरासा भी मखिया सहन करनेमें प्राणोंके नाश होनेकी अपेक्षा अधिक कर मानती हैं। और उनको धूआसे अत्यंत दारुण दुःख होते।

समर्थ मखिया जोशीघ्रही उड़ सकती हैं वे उस धूआको सहन करनेमें असमर्थ हो अपने छत्तोंको छोडकर उड जाती हैं परन्तु छत्ताके अन्दर गूढ़ा रहनेवाली मखिया अंडा और छोटी छोटी मखिया धूआके डरसे भी वहासे उडनेमें असमर्थ होनेके कारण वहीं पर अपने प्राण परित्याग कर मर जाती हैं। ऐसी परिस्थितिमें मधु निकालनेवाला मनुष्य उन मृतक मखियों सहित छत्ते को तोड लाते हैं और बच्चे सहित उस छत्ताको निचोड कर मधु निकालते हैं। इस प्रकार मधु निकालनेमें बहुतसी मखिया मर जाती हैं। बहुतसियोंका मांस रक्त धातु मधुके साथ साथ निचोडकर मधुमें परणत हो जाता है।

मधु एक प्रकार मांससे उत्पन्न होता है इसलिये मधुका सेवन करना मांसका सेवन ही है। बिना मांसके मधु

किसी भी अवस्थामें तयार नहीं होता है इसलिये मधुका सेवन करना महान् अहिंसाका कारण माना है मधुके उत्पन्न होनेमें जीवहिंसा होती है।

मधुकी एक बिंदुमें सात ग्रामके जलाने समान महान् हिंसा मानी है जितनी घोरहिंसा मधुभक्षणमें होती है उतनी हिंसा अन्य किसी पदार्थके सेवन करनेमें नहीं है।

मधु एक प्रकारसे मक्खियोंका वमन। और गिलापना और किसी प्रकारभी सेवन करने योग्य नहीं।

जिस प्रकार मांसमें निरंतर सूक्ष्म त्रसजीवोंकी उत्पत्ति होती ही रहती है। ठीक उसी प्रकार मधुमें निरंतर सूक्ष्म त्रसजीवों की उत्पत्ति होती ही रहती है। चाहे भी गरम किया जाय या शुष्क किया जाय अथवा अन्य द्रव्यसंयोग किया जाय परन्तु मधुमें जीवोंकी उत्पत्ति होना बंद होता है। जीवोंकी निरन्तर उत्पत्तिके कारणही मधुका सेवन करना विशेष निषिद्ध है।

मधुका परित्याग करनेवाले को मुरब्बा (खांड शक्कर का किसी एक पदार्थको गलाकर बनाया जाता है) नहीं सेवन करना चाहिये। मुरब्बा मर्यादाके बाद मधुके समान ही होजाता है उसमें त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होनेलगती है। जिससे उसके सेवन करनेमें मांसके अतीचारोंका लगता है।

नवनीत-(लोणी) यद्यपि इसका विचार आठ मूलगुणों में नहीं है तो भी नवनीत एक प्रकार मधुके समान ही है। लोणी (मक्खन) में दो मुहूर्तके बाद त्रसजीवोंकी उत्पत्ति हो

ोणोको दो मुहूर्तके अभ्यतर गर्म करके प्रासुक घो
ाय तो शुद्ध होता है।

नवनीत (लोणी) में इतना ही भेद है कि लोणी
न्तर गर्म करने पर प्रासुक हो जाती है फिर उसमें
्पन्न नहीं होती हैं परतु मधु किसी अवस्थामें
ोता है, चाहे गर्म किया जाय या अन्य क्रियासे प्रासुक
न किया जाय तो भी मधु प्रासुक नहीं होता है।
लोनी) को मर्यादाके भीतर ही तपाकर उसका घी
चाहिये, इसके विपरीत मर्यादासे बाहर लौनीका घी
विरुद्ध है। क्योंकि दो मुहूर्तकी मर्यादाके बाहर
ीव उत्पन्न हो जाते हैं।

नवनीत और मक्खनका सेवन मर्यादाका विचार
करते हैं वे एक प्रकारसे मार्गको भूले हुये हैं। नव-
के बाहर नवनीतको ही अपना शरीर बनानेवाले
त्रसजीव निरतर उत्पन्न होते रहते हैं। नवनीत-
ोंकी उत्पत्ति आगममें मानी है। सर्वज्ञ प्रभुने
में निरन्तर जीवोंकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष हैं।
ौर पाप मधुके सेवन करनेमें माना है उतना ही घोर
बाहरके नवनीतके सेवनमें माना है। अमितिगति
ने श्रावकाचारमें बतलाया है कि नवनीत मर्यादाके
ानेके लायक नहीं है। मर्यादाके आभ्यतर गर्म
घनाकर सेवन करने योग्य है। कच्चा नवनीत

क्यों नहीं सेवन करना ? यद्यपि इस विषयमें श्रीमदाचार्य श्री अमितिगति महाराजने कोई भी युक्ति प्रदान नहीं की है तो भी मालूम पडता है कि कच्चा नवनीत भी त्रसजीवोंकी उत्पत्तिकी योनि है और दो मुहूर्त बाद उसमें जीवराशि उत्पन्न हो जाती है और विकृत रूप होनेसे भी लौना भक्ष्य नहीं है।

पंच उदम्बरफल विचार

पंचफल—बडफल १ पीपलफल २ उंवर ३ कठूंवर ४ पाकर फल ५ इन पांच जातिके फलोंको पंचफल कहते हैं।

बडफल—बरी (बटवृक्ष) के बरगदोंको बटफल कहते हैं। बटफल पकने पर लाल रंगके होते हैं, कच्चे हरे रंगके होते हैं, बटफलमें पोलान होती है, उसमें बहुतसे त्रसजीव स्वयमेव उत्पन्न हो जाते हैं। ये जीव निरंतर उत्पन्न होते हैं मरते हैं पुनः उत्पन्न होते हैं पुनः मरते हैं। इस प्रकार बटफल में बहुत असंख्यात जीव उडते फिरते प्रत्यक्ष दीखते हैं।

बटफलका भक्षण करनेसे बहुतसे जीवोंका वध होता है और उनके कलेवरमें मांस खानेका दोष भी प्रत्यक्ष है।

पीपल फल—पीपलके वृक्षमें छोटे छोटे फल लगते हैं। कच्चे फल हरेरंगके होते हैं पकनेपर जरा सुर्ख (लाल) रंगके होजाते हैं।

पीपल फल भी पोले होते हैं। उनके आभ्यंतर बहुतसे त्रस जीव वास करते हैं और ये सबको उडते हुए प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। पीपलके फल खानेसे ये समस्त जीव मर जाते हैं और

उनकी हिंसा नियमसे होती है। इनके खानेमें भी मांस खानेका दोष प्रत्यक्ष लगता है।

यद्यपि वटफल और पीपरके फल कोई भी जैनी भाई नहीं खाता होगा, तो भी जबतक उसका परित्याग नहीं किया हो तब तक उसका आस्रव निरंतर लगा ही करता है इसलिये प्रत्येक भाईको वटफल और पीपलफलोंका परित्याग कर देना चाहिये।

उदंबर (ऊमरा) के फल—कच्चे अवस्थामें हरे रंगके होते हैं। पकने पर लालरंगके हो जाते हैं। और उदंबरके फलोंमें पोलान सब फलोंसे अधिक होती है और उदंबर अतिशय मिष्ट होनेसे इसमें बहु संख्यामें सूक्ष्म त्रसजीव निरंतर उत्पन्न होते ही रहते हैं। वटफल और पीपर फलकी अपेक्षा उदंबरके फलमें अधिक जीवराशि उत्पन्न होती है। उदंबरमें जीवराशि बहुसंख्यामें उडती हुई प्रत्यक्ष दीखती है।

उदंबरके फलोंको प्रायः अजैन लोग बहुत खाते हैं। उदंबर के फलोंका भक्षण करनेसे अनन्त जीवोंका वध होता है और उनके अभ्यंतर रहनेवाले जीवोंका मांस भक्षण करनेका भारी दोष अवश्य आता है। जितनी घोर हिंसा उदंबरके फल भक्षण करनेसे है उतनी घोर हिंसा अन्य किसी भी कार्यमें नहीं होता है।

उदंबरके फलोंका सेवन करनेसे अहिंसा धर्मका प्रतिपालन सर्वथा नहीं होता है। उदंबर फलोंका सेवन करनेवाले जीवोंके दयाके परिणाम सर्वथा नहीं रहते हैं। उदंबरके फलोंमें अभ्यंतर

बहुत त्रसजीवोंका कलेवर (मांस) उदुम्बर फलोंके भक्षणके साथ साथ होता है इसलिये मांस भक्षणसे सम्यग्दर्शनका लोप होजाता है। सम्यग्दर्शनके नष्ट होजानेसे जैनपना भी नष्ट हो जाता है।

जो उदुम्बरके फलोंको सेवन करता है वास्तवमें वह दया रहित पशु है। जब कि उससे प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हुए त्रसजीव जीवोंकी दया पालन नहीं हुई और उन जीवोंके शरीरका मांस नहीं छोड़ा गया तो फिर उसको जैनी किस प्रकार कहा जाय? उसको सन्मार्गगामी किस प्रकार माना जाय?

पाकर फल—एक वृक्षका फल है। वैद्य लोग पाकर फलको अंजीर कहते हैं। अंजीरमें त्रसजीव प्रत्यक्ष दृष्टिगोचार होते हैं। भगवान श्रुतसागराचार्यने पाकर फलकी व्याख्या "अंजीर इति देशभाषाया प्रसिद्ध" ऐसा अर्थ किया है इससे भी पाकर फलका अर्थ अंजीर ही होता है।

अंजीरको ही पाकर फल अन्य ग्रन्थोंमें बतलाया है। कितने ही आचार्योंका अभिमत अंजीरको ही पाकर फलके नामसे प्रसिद्ध किया है। निघंटु और कोषोंमें भी पाकर फलको अंजीर बतलाया है इससे यह स्पष्ट है कि पाकर फल अंजीर ही है।

वास्तविक अंजीर एक प्रकारसे उदुम्बरका ही भेद है (गूलर) को उदुम्बर कहते हैं। उदुम्बरकी विशेष जातिको ही पाकर फल कहते हैं। जो गुण गूलरमें हैं प्रायः पाकरफलमें भी वे ही गुण हैं जैसा आकार प्रकार उदुम्बर (गूलर) का होता है वैसा ही आकार पाकर फल (अंजीर) का होता है। इसलिये अंजीरको ही पाकर फल कहते हैं यह बात यथार्थमें ठीक प्रतीत होती है।

अजीरके फलमें पोलान बहुत होती है और त्रसजीवोंका वास अजीरके फलोंमें अधिकतासे होता है। जितने असंख्य जीव गूलरके अन्दर होते हैं उससे भी अधिक अजीरमें जीव राशि रहती है क्योंकि अजीरमें मिठास सबसे अधिक है, मिठास के लिये जीवराशि भी अधिक प्रमाणमें वास करती है। जो दूषण गूलरके भक्षण करनेमें है वेही समस्त दूषण अजीरके भक्षण करने में होते हैं।

अजीरके भक्षण करनेवालेके सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि किसी प्रकार नहीं रह सकती है। सम्यग्दर्शनका होना तो दूर रहा किंतु अजीर भक्षण करनेवालेके जैनीपना भी किसी प्रकार नहीं हो सका है। असंख्य जीवोंका नाश और उनके कलेवरका मांस भक्षण अजीरके भक्षण करनेमें अवश्य ही होता है इसलिये अजीरके भक्षण करनेमें मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति सर्वथा नहीं रहती है। न दयाके परिणाम ही स्थिर रहते हैं। इसलिये अजीरका सेवन सर्वथा परित्याग ही कर देना चाहिये।

बीमारी या अशक्तिमें भी अजीरका सेवन करना दयाधर्मको नष्ट करना है। जिस प्रकार मधुका सेवन बीमारी या अशक्तिकी अवस्थामें भी किसी प्रकार ग्राह्य नहीं है। प्राणांत होने पर भी मधुका सेवन जिनेन्द्र भगवानने निषेध किया है उसीप्रकार अजीरका प्राणांत होने पर भी सेवन नहीं करना चाहिये।

कितने ही आचार्य पाकर फल पीपरीके फलको बतलाते हैं। पीपरीका वृक्ष पीपरके समान ही आकृतिवाला होता है परन्तु

उसमें जटायें छोटी २ होती हैं और पत्ते लम्बे लम्बे सीताफलके समान होते हैं। समस्त आकारप्रकार प्राय वटवृक्षके समान कहाजाय तो भी हानि नहीं परन्तु पत्ते उसके वृक्षके समान नहीं होते हैं। जो कुछ भी हो। यदि पाकर फल पीपराके फलोंके कहे तो भी पीपराका फल सेवन करने योग्य नहीं है।

कितनेही पाकर फलको एक स्वतंत्र फल कहते हैं। गुजरात में पाकर फलके वृक्ष बहुत होते हैं अन्दरसे पोले होते हैं। उनमें अभ्यन्तर जीव होते हैं।

कठूमरका सेवन करना सब प्रकारसे भ्रष्ट करनेवाला है, जीवों का वध होनेसे और उनका कलेवर मांसरूप होनेसे कठूमर किसी भी अवस्थामें ग्राह्य नहीं है।

कितने ही मनुष्य जिस वृक्षमें फूल लगे बिना ही फल लगें उन फलोंको कठूमर कहते हैं परन्तु यह बात सर्वथा नहीं है। फूल बिना फल बहुतसे वृक्षोंमें लगते हैं। वटफल, पीपरफल, गूलर, अजीर आदि समस्त फल फूल बिनाही फलीभूत होते हैं। तो फिर पंचफलोंको पृथक् पृथक् न कहकर एक कठूमर कहनेसे पूर्णता हो जाती परन्तु किसी आचार्यने कठूमरका अर्थ यह नहीं बतलाया है कि जिस वृक्षमें फूल न लगकर फल लगै उसको कठूमर कहते हैं।

ऐसा नहीं समझना चाहिये कि जिस वृक्षमें फूल न लगकर फल लगते हों (फूलके बिना लकडीको फोड कर फल लगते हों) वे सब फल अभक्ष्य हैं। नहीं बहुतसे ऐसे फल हैं कि जिनकी

उत्पत्ति फूल विना है परन्तु वे शुद्ध हैं, भक्ष्य हैं। इस लिये कठू वर एक स्वतन्त्र फल है। फूल विना उत्पन्न हुआ फल नहीं है।

आगममें कठूवरको एक स्वतन्त्र फल बतलाया है। आगम मे कठूवरका अर्थ काठफोडा नही लिखा है। इसलिये कठूवर एक वृक्षका स्वतन्त्र फल है और कठूवरमें जीवराशि होनेसे अभक्ष्य है। इन पाच उदम्बर फलोंका कथन उपलक्षण है वास्तवमें जिन फलोंमें त्रस जीव पाये जाय ऐसे फलोंका भक्षण सर्वथा त्याज्य है और ऐसे फल जिनमें निरतर जीव उत्पन्न होते रहते हैं अथवा जिनसे वे जुदे नहीं हो सके वे सब उदम्बर् श्रेणीमें है

इस प्रकार मद्य, मास, मधु, वटफल, पीपलफल ऊमर (गूलर) पाकरफल (अजीर) और कठूमर फल (पिल्खन) इन पदार्थोंमें बहुत्रसोत्पत्ति होती है इसलिये इन सबके परित्याग को मूलगुण कहते हैं।

सर्व साधारण दृष्टि से इन मूलगुणोंका पालन प्रत्येक जातिवाला मनुष्य प्रत्येक वर्णवाला मनुष्य और किसी भी प्रकार का धधा करनेवाला मनुष्य कर सक्ता है।

जिन मनुष्योंका व्यापार अधम है—क्रूर व्यापार है और जिनका वर्ण व कुलजाति भी अधम है। जिनमें वशपरपरासे मलिन व्यापार के सस्कार नियमितरूपसे चले आरहे हैं ऐसे भव्यजीव भी इन आठ मूलगुणोंका परिपालन सुगमता के साथ कर सक्ते हैं। किसी प्रकार की असुविधा उनको नहीं

हो सकी है और न उनके व्यापारादि आजीविकामें विशेष परिवर्तन ही होना है।

यदि मनुष्योंके समस्त कुटुंबमें मूलगुणोंकी धारणा नहीं हो तो भी वे मनुष्य सातिचार और निरतिचार उभयरूपसे मूलगुणोंका परिपालन विना किसी कष्टके और परिणामोंमें किसी प्रकारका सक्लेशताके सम्यक् प्रकारसे कर सकते हैं।

पाक्षिक व्रतको धारण करनेवाले श्रावकगण उपरोक्त मूल गुणोंके पालन करनेमें किसी प्रकारकी कठिनताएँ नहीं पाते हैं। मद्य मांस और मधुका परित्याग वंशपरम्परासे बहुतसी जातियोंमें है। कुल धर्मकी अपेक्षा मद्यादि पदार्थोंका परित्याग नीच ऊंच बहुतसे वर्णोंमें स्वभावरूपसे होता है। बहुतसी शूद्रजाति यामें मद्यमांसादि निंद्य पदार्थोंके भक्षण करनेकी परिपाटी स्वभावरूपसे उनके कुल उनकी जातिमें नहीं है। ऐसे शूद्रगण भी उपरोक्त मूलगुणोंका पालन अतिशय सुगमताके साथ कर सके हैं।

सब सामान्य मनुष्य जातिकी अपेक्षासे विचार किया जाय तो कोई भी मनुष्य किसी भी देशमें यदि वह चाहे तो उपरोक्त मूलगुणोंका पालन बहुत सुगमताके साथ कर सकता है। इसलिये सर्व साधारण जनमंडल की अपेक्षा ये आठ प्रकारके मूलगुण आगममें प्रतिपादन किये हैं।

यद्यपि पाश्चात्य देशोंमें निरतिचार मूलगुणोंका पालन होना अशक्य है तो भी सातिचार पालन अतिशय कठिनतासे हो सकता

है। उसके लिये भी अनेक प्रकारकी असुविधायें अवश्य होंगी परन्तु भारतवर्ष (पुण्यभूमि) में तो सर्वत्र अतिशय सुगमताके साथ निरतीचारपूर्वक पालन हो सका है। किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित नहीं होती है।

धर्मके लिये अनुकूल क्षेत्रकी अतिशय आवश्यकता होती है। जिस प्रकार द्रव्य, काल, और भाव धर्म धारण करनेमें सहायक या विरुद्ध होते हैं उसीप्रकार क्षेत्र भी धर्मके धारण करनेमें साधक और बाधक अवश्य होता है। पाश्चात्य देशका ऐसी परिस्थिति हो रही है कि वहा पर उच्चकोटिका धर्म किसी प्रकार भी धारण नहीं किया जा सका है। आठ मूलगुणोंका पालन भी अत्यन्त कठिनताके साथ कभी किसीको हो सका है।

पुण्यभूमि (भारतवर्ष) में उच्चकोटिका मोक्षमार्ग अवश्य ही नियमपूर्वक हो सका है। इसीलिये आचार्योंने बतलाया है कि पंचमके अन्त तक चतुर्विध (मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका) सघसे मोक्षमार्ग रहेगा।

मूलगुण पालन करनेवाले भव्य जीवोंको बहुत प्रकारका विचार और सावधानी रखना पड़ती है। वह प्रत्येक बातमें विचार करता है कि किन किन कारणोंसे व्रतोंमें बाधा और मल (अतीचार) आते हैं? उन सबका परित्याग वह करता है।

बाजारू चीजोंके खानेका विचार

बाजारकी बनी हुई मिठाई या अन्य प्रकारसे तैयार खाद्य पदार्थ पूड़ी साग आदि आठ मूलगुणोंको विशुद्धपूर्वक पालन

करनेवाले भव्य जीवके किसी प्रकार काममें नहीं आसक्ते हैं। क्योंकि उन पदार्थोंमें सब प्रकार मांसादिके दूषण सहजमें ही हो जाते हैं। प्रत्यक्षरूपसे देखा जाय तो बाजारके पदार्थ जीवहिंसा-से तैयार होते हैं। बिना शोधे सडेहुए पदार्थ जीवमिश्रित पदार्थ और सूक्ष्म त्रस जीववाले पदार्थ बाजारमें मलिन नियासे रात्रि दिवस विचार और विवेक बिना तैयार किये जाते हैं। उनके सेवन करनेसे साक्षात् मांसभक्षणका दोष होता है।

होटलोंमें खानेका विचार

इसी प्रकार होटल बासा ढाबा आदिमें भी किसी प्रकारका विवेक नहीं होता है। बाजारमें या होटल ढाबा आदिमें पैसा कमानेका व्यापार होता है जीवहिंसाका विचार नहीं होता है और न धर्मका विचार होता है। चाहे वह पदार्थजीवोंकी हिंसासे बने, चाहे उस पदार्थमें असंख्य जीवराशि बनाते समय पड गई हो, चाहे वे पदार्थ सब जीवराशिसे परिपूर्ण हों तो भी वहां पर किसी प्रकारका विचार या विवेक नहीं रखा जाता है इसलिये मूलगुणोंकी विशुद्धता रखनेवाला भव्यजीव बाजारके तैयार खाद्य पदार्थ या होटल ढाबेके पदार्थ किसी प्रकार भी सेवन नहीं कर सक्ता है।

बाजारके पदार्थोंमें या होटल ढाबेके पदार्थोंमें शुद्धताका नाम निशान तक नहीं होता है। शुद्धता वहांपर किसी प्रकारसे रह नहीं सक्ती है क्योंकि शुद्धताका अविवेकके साथ विरोध है। जहां पर किसी भी बातमें विवेक सर्वथा नहीं है, जीवहिंसा, यत्नाचार,

शुद्धि विचार और पापकी प्रवृत्तिका जहा पर विवेक नहीं होता है वहापर शुद्धता ठहरती नहीं है। होटल ढावे आदिमें विवेक रह नहीं सक्ता, जो वहापर सब प्रकारका विवेकरा विचार किया जावे या विशेष शुद्धता पर ध्यान दिया जावे नो उनका वह व्यापार चल नहीं सक्ता।

होटलोंमें पानी छाननेका विचार नहीं होता है, जीवानीका विचार नही होता है, रात्रिमें बनानेका विचार नहीं होता है, ऊंच नीच मनुष्योंके मलिन सस्कारका विचार नहीं होता है और न बाह्यशुद्धिका ही विचार होता है, भक्ष्याभक्ष्य पदार्थोंका भी वहा बिलकुल विचार नहीं होता है, इसलिये मूलगुणोंकी विशुद्धि चाहनेवाले भव्य जीवोंको ढावेमें बाजारके सडे गले चाहे जैसे पदार्थ नहीं सेवन करना चाहिये।

जिस देशमें होटलोंका ही व्यवहार है और घर पर भोजनकी पद्धति ही नहीं है, जहापर चमडेके वस्त्र और जूता पहन कर सब काम किया जाता है, जहा पर मर्यादारहित सब पदार्थ काममें लाये जाते हैं, जहापर मद्य मासका सेवन प्रत्येक समयमें सर्वत्र होता है वहापर मूलगुणोंका निर्वाह होना सर्वथा अशक्य है। विलासिता और नास्तिकताके सामने निवृत्तिरूप अहिंसाधर्म एक क्षणमात्र भी ठहर नहीं सक्ता है।

जो लोग विलायत जाते हैं और वहापर ही अपनी भोजनचर्या करते हैं उन कर्मम्लेछोंने कुसस्कारोंसे सब काम करते हैं उनके मूलगुणों का पालन [illegible] अशक्य है।

मूलगुणोंके पालन करनेसे ही मोक्षमार्गकी पात्रता व्यक्त होती है, सम्यग्दर्शन धारण करनेकी योग्यता प्रकट होती है। जिन जीवोंको निकट भव्यता प्राप्त हुई है अथवा जिनको क्षयोपशम-लब्धि प्रकट होनेवाली है अथवा जो भव्यात्मा मोक्षमार्गके सन्मुख होनेकी निकटताको प्राप्त होनेवाले हैं अथवा जिन जीवोंके भद्रता प्रकट हो चुकी है, अनतानुबंधी कषायका जिन जीवोंके मंदपना प्रकट हो गया है ऐसे ही जीवोंको मूलगुणोंके धारण करनेके भाव होते हैं या ऐसे ही पुण्यपुरुष अपने शुभोदयसे द्रव्य क्षेत्र काल भावकी ऐसी अनुपम योग्यता सपादन करते हैं जिससे उनके परिणामोंमें आठ मूलगुण धारण करनेके भाव स्वयमेव हो जाते हैं।

बिना शुभोदयके आठ मूलोंका धारण करना सहजकी बात नहीं है क्योंकि सन्मार्गकी सबसे प्रथम श्रेणी आठ मूलगुणोंका धारण करना ही है। जबतक आठ मूलगुणोंको धारण करनेकी योग्यता सप्राप्त नहीं हुई है अथवा प्रमाद या कुशिक्षाके प्रभावसे मूलगुण धारण नहीं किये हैं तबतक सन्मार्गकी प्राप्ति किसी प्रकार भी व्यक्त नहीं होती है।

कुशिक्षा विचार

कुसगति और कुशिक्षा जीवोंको कुमार्गपर सहसा [illegible] जाती है। जो भाई जैनकुलमें उत्पन्न हुये हैं या जैनी कहा कर कुशिक्षाके सबसे पवित्र मोक्षमार्गमें विपरीतता लाना चाहते हैं वे धर्मविहीन आर्षमार्गलोपी हैं। उनसे आठ मूलगुणोंका धारण करना नहीं होता है। उनके भावों चचलता भोगविलास मौजमजाके

कार्योंमें ही प्रेरित रहती है। रात्रि दिवस उनके विचार ऐसे मलिन और अज्ञानपूर्ण होते हैं कि विचार और विवेकके विना यत्र तत्र स्वेच्छाचारसे जो मिला वह सेवन कर लिया, चाहे होटलकी चायदेवी हो चाहे बोतलकी सुरादेवी हो, चाहे ईरानी मनुष्योंकी होटल हो चाहे बाजारके चमकेदार सड़े हुये अशुद्ध पदार्थ हों विना विचारे ही सेवन कर लिये जाते हैं। ऐसे मनुष्यों के मूलगुणोंका पालन किस प्रकार हो सकता है ?

जिन लोगोंको परलोकका भय है, जो पुण्य पापको मानते हैं, जिनको पापोंसे कुछ भी ग्लानि है, जो जीवहिंसामें पाप मानते हैं, जिनको मद्य मांस और मलिन पदार्थ विषरूप प्रतिभास होते हैं, जिनके आस्तिक्यताके भाव सदा जागृत रहते हैं जिनके परिणामोंमें दयाका संचार है वे ही पवित्र मनुष्य आठ मूल धारण करनेके लिये उत्कंठित रहते हैं, उनके परिणामोंमें मूलगुण धारणका हर्ष और उत्सुकता रहती है। उनके भावोंमें विशुद्ध भावनाकी वासना उत्तम कार्य करनेकी तरफ बुद्धि और मनको प्रेरित करती रहती है।

मद्यमें कहां जीव है यह तो बड़ी साफ है उसके विना रोगमें क्या प्राणोंको नष्ट कर देवें ? जीवनको जलांजलि दे देवें ? और इसमें धरा ही क्या है व्यर्थ ही पाप पाप और पापका भूत बतला कर सबको डरा रक्खा है परन्तु इसमें कौनसा पाप है समझमें नहीं आता है ! इस प्रकारके विचार बहुतसे शिक्षित नवयुवक बार बार सामने करते हैं, ऐसे प्रश्नोंके ढेर सामने खड़े करते हैं

और अपनेको जैनी कहलानेका जबर्दस्त दावा रखते हैं भला उन को किस युक्तिसे बतलाया जाय कि मद्यमें सतत जीवोत्पत्ति होती रहती है। ऐसा भी तर्कणा करते हैं कि यद्यपि मद्यके बनानेमें जीवहिंसा हुई होगी यह हम करते नहीं हैं। यों तो गेहू आदि अन्नके उत्पन्न करनेमें क्या जीवहिंसा नहीं होती है? परन्तु गेहू तैयार होनेके बाद जिस प्रकार शुद्ध है उसी प्रकार मद्य भी शुद्ध है तो फिर जिस प्रकार गेहू आदि पदार्थ सेवन करनेमें हानि नहीं है उसी प्रकार मद्यपान करनेमें क्या हानि है?

उक्त प्रकारकी तर्कणायें वे करते हैं जिनको जिनागमका हृदयसे श्रद्धान सर्वथा नहीं है, नाममात्रके जैन कहलानेका दावा जबरन रखना चाहते हैं। श्रीसर्वज्ञप्रभुने मद्यमें जीवोत्पत्ति बतलाई है इसलिये मद्य जीववधका कारण और अशुद्धताका आयतन है। गेहू जिस प्रकार निर्दोष है वैसे मद्य निर्दोष नहीं हो सकता।

कुशिक्षाके प्रभावसे मनुष्योंके विचार इससे भी अधिक विवेकशून्य हो जाते हैं। कितने ही महाशय शिक्षक जैनधर्मको इसलिये अयोग्य बतलाते हैं कि इसमें सब प्रकारके मौजमजा और स्वेच्छाचारमें रुकाव रुकाद जाती है। इसीलिये कितने ही पढ़े लिखे मनुष्य जैनधर्मसे ग्लानि करने लगे हैं और कितनोंने तो जैनधर्मका परित्याग कर अन्य धर्म स्वीकार कर लिया है।

कितने सुधारक उस प्रकारकी त्यागमर्यादाको रूढ़िका पजड़ा बतला कर त्याग मर्यादा करनेवालोंका मजाक उड़ाते हैं, यह सब कुशिक्षासे एक प्रकारकी निर्लज्जता प्राप्त हो गई है इससे

ही मलिनबीजके ये अकुर हैं। स्वत मद्य मास आदि निंद्यपदार्थों का परित्याग स्वच्छंदवृत्ति होनेसे नहीं हो सक्ता परतु अपनी बातको जानकर कोई अपनेको अधम नहीं माने इसलिये अपने आप ही त्याग मर्यादा करनेवालोंका मजाक उडाने लगते हैं। जब मद्य मास आदि निंद्य पदार्थोंका परित्याग पढ लिखकर ज्ञानी बनकर भी उन लोगोंसे नहीं बनता तो फिर उनके ज्ञानका फल क्या समझा जाय?

अपनेको जैनी कहलानेवाले भाइयोंको तो मद्य मास आदि पदार्थोंका परित्याग नियमसे ही होना चाहिये। जब हम अहिंसा परमो धर्मकी दुहाई देकर अपनेको जैनपनेका दावा सबको बत लाते हैं तब हम स्वत ही अहिंसा परमोधर्मका पालन न करें तो समझना चाहिये कि हमारा भेष कुशिक्षाके अवरोंसे आच्छादित (ढका) है। मायावी वृत्ति हमने धारण कर रखी है। इसप्रकार की वृत्ति धारण करनेवालोंको जैनी किस प्रकार कह सक्ते हैं!

जिनके आठ मूलगुणोंका पालन नहीं है वे जैन होने पर भी अजैन हैं और जिनके आठ मूलगुणोंका पालन होता है वे चाहे अजैन हों तो भी उनको सच्चा जैन मानना चाहिये। सच्चा जैन वही है कि जिसने आठ मूलगुणोंका पालन किया है।

कई आचार्योंने अन्य प्रकारसे भी आठ मूलगुण प्रतिपादन किये हैं। स्वामी समतभद्राचार्य पांच अणुव्रतोंका पालन और मद्यमास मधुका परित्याग इसको मूलगुण बतलाते हैं।

पांच अणुव्रत विचार

पांच अणुव्रत—स्थूल हिंसा त्याग, स्थूल असत्य त्याग, स्थूल चोरीका त्याग, स्थूल कुशील त्याग और परिग्रहकी मर्यादा इस प्रकार पांच अणुव्रत हैं।

गृहस्थोंके कर्तव्य आरंभमय ही होते हैं। उनको अपने आवजनिवाहके लिये निरुपायसे (जरूरत) हिंसाके कर्तव्य करने पड़ते हैं। कोई व्यापार करता है। कोई अन्यायसे जगतको लूटता है ऐसी परिस्थितिमें हिंसाका परित्याग किस प्रकार किया जाय कि जिससे गृहस्थोपयोगी आजीविका होता रहे और जीवोंकी हिंसा भी नहीं हो। इसी आशयसे हिंसाके बहुत भेद आचार्योंने बतलाये हैं। समस्त प्रकारका हिंसा मुनिराज ही परित्याग कर सकते हैं। परन्तु गृहस्थ अपने जीवनोपयोगी कर्तव्योंको करता हुआ भी हिंसाका परित्याग कर सकता है इसीलिये ऐसी हिंसाके त्यागको स्थूल हिंसाका त्याग कहते हैं।

जिन जीवोंने अपना कुछ भी अपराध नहीं किया है अपनी यत्किंचित् भी हानि किसी प्रकार नहीं की है ऐसे त्रसप्राणियोंको संकल्प पूर्वक (मानसिक इरादेसे) नहीं मारना सो अहिंसा अणुव्रत है।

सकल्पपूर्वक हिंसा मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनाके भेदसे नवप्रकार होती है। आठ मूलगुणमें सकल्प पूर्वक हिंसाका ही परित्याग होता है। गृहस्थसे आरंभ हिंसा,

उद्योगी हिंसा, व्यापार आजीविकाके निमित्तसे स्वयमेव होनेवाली हिंसा और विरोधी हिंसाका परित्याग नहीं होता है।

संकल्प पूर्वक हिंसाका परित्याग करना भी बड़ा कठिन है, संसारी जीवोंके परिणाम मोहोदयसे निरंतर रागद्वेष मय बने रहते हैं। क्रोध मान माया लोभ आदि कषायें निरंतर जागृत रहती हैं। कषायोंके आवेशमें जीव अंधा और विवेकशून्य हो जाता है। जिससे वह अपराधी निरपराधी जीवोंकी परीक्षा किये बिना ही अपनेसे शक्तिमें हीन दीन क्षुद्र प्राणियोंको मारनेके लिये सहसा उद्योगशील हो जाता है। जरासे अपने प्यारे विषयोंकी हानि देखी या अनिष्ट विषयोंकी प्राप्ति होती हुई दृष्टिगोचर हुई कि इस मोही जीवको कषायोंका उद्रेक सहसा बढ़जाता है। और निरपराधी जीवोंको भी अपने संकल्पसे (इरादेसे जान बूझकर) मारनेके लिये तैयार हो जाता है। ऐसी घटना नित्य अनेक जीवोंको प्रत्येक क्षणमें उपस्थित होती हैं कभी अपने मनमें विचारोंसे दूसरोंकी हानि पहुंचानेके संकल्प विकल्प करता है कभी निरपराधी जीवोंको मारनेके लिये वचनोंसे कहता है। स्वयं मारता है दूसरोंसे मरवाता है या कोई मारने आवे तो स्वयं बहुत प्रसन्न होता है। संसारमें जितने भयंकर (अन्याय अत्याचार और जुल्मके) पाप होते हैं वे सब संकल्पपूर्वक हिंसाका परित्याग नहीं करनेसे होते हैं हिंसाका त्याग करनेसे ऐसे पाप स्वयमेव बंद हो जाते हैं, इसके लिये न तो राजदंडका भय होता है और न फिर अन्य प्रकारका रहता है। जो दूसरे

निरपराधी जीवोंको किसी प्रकार मारना नहीं चाहता कष्ट देना नहीं चाहता उनके धन भोग परआर और इष्ट वस्तुओंको अन्याय या जबरनसे छीनना नहीं चाहता मनसे भी उनकी बुराइया हानि करनेकी बात नहीं विचारता तो फिर इसका संसारमें कौनसा दुश्मन है जिससे इसको भय हो, क सारके समस्त जीव इससे बधु हो जाते हैं।

दूसरोंको सताकर अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये ये ही जीव अन्याय अत्याचार या जुल्म करते हैं जिनके सकल्पी हिंसा का त्याग नहीं है। धमके बहाने हिंसा ऐसे ही नर पिशाच करते हैं। स्वराज्यके मिथ्या प्रलोभनमें पड़कर अगणित मनुष्य जैसे उत्कृष्टके जीवोंके वध करनेमें जरा भी विचार नहीं करते हैं। तो फिर छोटे छोटे दीन हीन निर्बल प्राणियोंकी क्या बात ! वे तो रात्रि दिवस निर्दयताके साथ कुचल दिये जाते हैं, पीस दिये जाते हैं, अस्त्र शस्त्रोंसे काट दिये जाते हैं, किसके हृदयमें यह विचार होता है कि हा हा ! इन जीवोंने मेरी क्या हानि की है, जो बिना अपराध के मैं अपने अज्ञानसे बिना मतलब इनका नाश कर रहा हू।

यदि सब प्रकारके पापोंसे बचनेकी इच्छा है और ससारमें न्यायनीति पूर्वक सत्यमार्गपर सहृदय चलना है, समस्त जीवोंकी दया पालना है तो सकल्पीहिंसा तो सर्वथा नहीं करनी चाहिये। विरोधी और उद्योगी हिंसाके लिये अन्यायका विचार नहीं करना चाहिये तब ही तो धममार्ग या सत्यमार्गका सच्चा प्रतिबोध होगा और आत्मकल्याण होगा।

मृगसेन धीवरने मुनिराजसे सकल्पीहिंसाका एक अश पालन करनेका इतना ही व्रत लिया था कि मैं अपने जालमें सबसे प्रथम आने वाले जीवको नहीं मारूंगा। जब जालमें हजारों निरपराधी जीव नित्य मरते हैं तो एक जीवको छोड देना बिलकुल सरल बात है। परन्तु इस व्रतसे भी वह देवोंसे पूज्य हुआ, मोक्षमार्गका गामी हुआ तो समस्त जावोंका सकल्पीहिंसा छोड देनेसे सर्वोत्कृष्ट पद वह क्यों नहीं प्राप्त कर सका है? परन्तु वर्तमान समयमें जैसे जैसे ज्ञानकी वृद्धि हो रही है वैसे वैसे पढे लिखे ज्ञानी मनुष्योंसे अन्याय अत्याचार और जुल्मकी मात्रा अत्यन्त पराकाष्ठारूपसे बढ रही हैं। पढे लिखे दिन दहाडे डाका डालते हैं और निरपराध जीवोंके प्राणसे प्यारे धनको लूटकर बहुतसे मनुष्योंको मार डालते हैं। घूस चोरी और अनीतिसे गरीब निरपराधी अजान मनुष्योंको सताते हैं। अपने स्वार्थकेलिये बडी क्रूरतासे खून करते हैं। साम्यवादकी नीति (अन्याय) को सामने रखकर अगणित निरपराध मनुष्योंको मारडालते हैं। इन सबका कारण एक यही है कि दयाधर्मका मार्ग उनको मालूम नहीं, अनेक डिग्रियां प्राप्तकरलीं तो क्या? जब मनुष्य जैसे उच्च प्राणियों पर निरपराध इसप्रकार जुल्म मचाया जाता है तो गाय घोडा, भैंस कबूतर आदि जीवोंकी कौन दया पालन करता है? बडे बडे कारखाने गाय भैंस कबूतर आदि निरपराध प्राणियोंको मारनेकेलिये अनेक पढे लिखे अपनी विज्ञानकी महिमासे खोलते हैं। और लाखों प्राणियोंपर जुल्म विना कारण करते हैं।

जब मनुष्य गाय भैंस जैसे उपयोगी और उच्च प्राणियों पर दया नहीं है तब मद्य मांसमें रहने वाले सूक्ष्म जीवोंकी दयाका विचार कहां होता है ? अनेक पढ़े लिखे मद्यमांस सेवन करते हैं और अपनेको ज्ञानी मानते हैं। परन्तु ज्ञानका अर्थ यह नहीं है कि ज्ञानी बनकर समस्त जीवोंकी निरपराध हिंसा करो और अन्याय और जुल्मसे अपनेको बड़ा मानो।

जबतक संकल्पीहिंसाका त्याग नहीं किया जायगा तब तक संसारसे जोर जुल्मोंका नाश नहीं होसक्ता और न सन्मार्ग व्यक्त होसक्ता है। इसलिये आचार्योंने आठ मूलगुण पालन करनेके लिये सबसे प्रथम हिंसाका परित्याग कराया है। जब निरपराध जीवों की दयाके भाव मनमें नहीं हैं तब धर्म धारण करनेके भाव कैसे हो सके हैं।

सच्चा वीर वही है जिसने हिंसा छोड़ी, सच्चा ज्ञानी वही है जिसने हिंसाको ही समस्त प्रकारके पापोंका बीज माना। दूसरे कमजोर पराधीन और दीन निरपराधी जीवोंके प्रति अन्यायी बनने में वीरता या धर्म नहीं है। अपनेसे बलवान और शक्तिशाली जीवों पर अन्याय करो तो अन्याय फल तत्काल ही मिलेगा। उनका भला कभी नहीं हो सक्ता जो निरपराधी जीवोंको मारनेमें अपनी भलाई समझते हैं वह ज्ञानी पढ़ा लिखा सुधारक होकर भी मूर्ख हुआ है जो अन्यायसे अपनी आत्माका सुधार नहीं कर पाता।

स्थूल झूठपर विचार

दूसरा मूलगुण झूठका त्याग है। जिस झूठके बोलनेसे दूसरों की हानि न हो—जीववध और अन्यायकी प्रवृत्ति न हो, मिथ्या मार्गकी प्रवृत्ति न हो वह झूठका परित्याग है।

झूठ बोलनेके समान अन्य पाप नहीं है। झूठ बोलनेवाले विवेक बिना मिथ्याभाषण सर्वत्र कर भोले और दीन प्राणियों पर जुल्म करते हैं, अन्याय करते हैं, अत्याचार करते हैं, क्रोध करते हैं, विश्वासघात करते हैं और ठगाइके समस्त धंधे करते हैं जिससे निरपराध दीन प्राणियोंकी सब प्रकारसे हानि और प्राणोंका नाश होता है।

चाहे व्यापारमें धन प्राप्ति हो अथवा नहीं हो चाहे अपने स्वार्थ की सिद्ध हो अथवा नहीं हो परन्तु मिथ्याभाषण (झूठ बोलकर) से दीन प्राणियोंका नाश नहीं करना चाहिये। जो मिथ्याभाषण (झूठ बोलना) करते हैं वे सत्य मार्गको नहीं जानते हैं। धर्मके स्वरूपको नहीं जानते हैं नीति और सदाचारको नहीं जानते हैं।

ज्ञानी मनुष्योंका यही उत्तम कार्य है कि प्राणान्त होने पर भी किसी प्रकार मिथ्याभाषण नहीं करें चाहे सर्वस्व नष्ट होजावे तो भी मिथ्या भाषण नहीं करें। क्रोध लोभके वशीभूत होकर भी मिथ्याभाषण नहीं करे तो ही सन्मार्गकी प्राप्ति होगी। अहिंसा धर्मका पालना होगा।

ज्ञानके बिना मिथ्याभाषण (झूठ बोलने) का त्याग नहीं हो सका ? परन्तु न्यायालयोंमें देखते हैं कि झूठ बोलकर समस्त

संसारकी सब प्रकार हानि पहुंचानेवाले ज्ञानी पढ़े लिखे हो हैं। निरपराधीको फांसी होता है और अपराधी इससे मुक्त किया जाता है, न्याय सिंहासन पर पढ़े लिखे ज्ञानी वकील बैरिष्टर सत्य को मिथ्या और मिथ्याको सत्य सिद्ध करनेका धंधा करते हैं। विचारे कितने ही निरपराधियोंके गले काटे जाते हैं, उनकी धना दिक सर्वस्वकी हानि झूठ बोलनेके व्यापारसे हो पहुंचाई जाता है इसलिये आचार्योंने झूठ बोलनेमें महान् पाप बताया है। समस्त प्रकारके अनर्थोंका जड़ झूठ बोलना बतलाया है। झूठ बोलनेवाले मनुष्यके हृदयमें दया विवेक और नीति सर्वथा नहीं रहती है, जिनके दया विवेक और नीति नहीं है उनके अहिंसा परमो धर्म-किस प्रकार मालूम हो सका है।

जो भव्य जीव अहिंसा व्रतका पालन मोक्षमार्गकी सिद्धिके लिये चाहते हैं उनको झूठ बोलनेका परित्याग सर्वथा करदेना चाहिये। श्रावकधर्म धारण करनेवाले भव्य जीवोंको अपने धर्म का रक्षाके लिये यह सत्याणुव्रतरूपी मूलगुण धारण कर आत्म-कल्याण करना चाहिये।

स्थूल चोरीपर विचार

तीसरा मूलगुण चोरीके परित्यागसे अचौर्याणुव्रतके पालन करनेसे होता है। चोरी करना यह भारी अपराध है, प्रत्यक्ष दीखता हुआ अन्याय है। चोरी करनेवालेको राजदंड दिया जाता है। चोरी करनेवाले बहुतसे निरपराधी मनुष्योंको मार डालते हैं अन्याय और अत्याचारसे उनके प्राणोंसे प्यारे धनादिका अपहरण

कर लेते हैं। संसारमें समस्त प्रकारके पाप चोरी करनेवाले मनुष्य करते हैं अतएव आचार्योंने चोरीके त्याग करनेमें मोक्षमार्ग की सिद्धि बतलाई है।

जिनके चोरीका परित्याग नहीं हैं उनके मोक्षमार्गकी प्राप्ति नहीं होसकी। दयाके परिणाम नहीं हो सके। झूठ बोलनेका परित्याग नहीं होसका। हिंसा और क्रूरताके व्यापार नष्ट नहीं हो सके। नीतिका पालन नहीं होसका। धर्मकी रक्षा नहीं हो सकी। चोरी करनेवाले जीवोंसे एक भी पापका त्याग नहीं हो सका ? इसलिये चोरी करना अधर्म बतलाया है। चोरीके त्याग करनेसे ही मूलगुणोंकी पालना और सन्मार्गकी प्रवृति होगा।

परंतु चोरीका परित्याग करना अतिशय कठिन है विरले ही प्राणी चोरीका परित्याग कर अपने अप्रतिम वीर्यका परिचय देते हैं। बातबातमें क्षणक्षणमें हम अपनी आत्माके शुभभावोंकी चोरी करते हैं दूसरोंके धनको सब प्रकारसे अपहरण करनेके लिये अनेक प्रकार युक्ति विचारते हैं। विश्वासघातके विचार करते हैं घूस लेने के बहाने चोरी करते हैं बिना टिकटके मुसाफिरी कर रेलवेकी चोरी करते हैं। कस्टम खातेका महसूल छिपाकर चोरी करते हैं। झूठे स्टाप लिखाकर चोरी करते हैं, मार्गमें गमन करते हुये दूसरों के रखे हुये आम बेर जामुन आदि फलोंको तोडकर चोरी करते हैं, खेतमेंसे होरा (चणा) तोडकर चोरी करते हैं, इस प्रकार किसी न किसी रूपमें चोरी करनेकी संसारी जीवोंकी आदतसा पड गई है, स्कूलमें पेंसल कागज आदिकी चीजोंके चुरानेमें चोरी नहीं मानते

हैं, उनसे पूछा जाय कि दूसरोंकी चीजें बिना मालिककी आज्ञाके क्यों लेते हो यह तो चोरी है? उत्तर मिलता है इसमें क्या चोरी हुई! इसी प्रकार घूस लेनेवालोंसे पूछा जाय कि आप घूस लेकर चोरी क्यों करते हो? तो उत्तर मिलता है कि कि वाह! इसमें क्या चोरी है, हम उसका काम करते हैं, परन्तु काम करना तो उनका कर्तव्य ही है फिर भी चोरी करते हुये अपनेको चोर नहीं मानते!

आजकल जितनी चोरियां पढ़े लिखे ज्ञानी मनुष्योंसे होती हैं उतनी गंवार लोगोंसे नहीं होती हैं। मात्र गंवार लोग कायदाका विचार नहीं करते हैं और पढ़े लिखे कायदेको (कानूनको बचा कर) विचार कर चोरी दिन दहाड़े बड़ी क्रूरता और निर्लज्जताके साथ करते हैं, अनेक पढ़ेलिखे मनुष्योंका एकप्रकारसे ऐसा व्यवसाय ही प्राय हो गया है। वे लोग स्कूल और कालेजोंमें ऐसी बुरी अपनी आदतें डालते हैं कि उनको स्कूल और कालेज छोड़नेके बाद चोरी अवश्य करनी पड़ती है। मौज शौकका इन्तजाम स्कूलोंमें पड़ जानेसे ऐसी भयंकर नीचातिनीच आदतें पड़ जाती हैं कि जिनकी पूर्तिके लिये चोरी किये बिना जीवनयात्राको पूर्ण करनेमें वे सर्वथा असमर्थ हो जाते हैं।

एक तरफ सुधार और नीतिके ढोल बजाये जाते हैं तो दूसरी तरफ इन पढ़े लिखे ज्ञानी मनुष्योंकी चोरीके दुष्कृत्य देखकर उनके ज्ञानपर तरस आता है।

जिस ज्ञानको सम्पादन कर भव्यजीव आत्मकल्याण कर

जगतका उपकार करते हैं, उसी ज्ञानको प्राप्त कर आजकलके पढ़े लिखे ज्ञानी और अपनेको सुधारकोंका नाम प्रसिद्ध करने वाले जगतके जीवोंको ठग कर अपनी आत्माको भी ठगते हैं और ज्ञानके नाम पर कलंक लगाते हैं।

इसलिये चोरीका परित्याग करना कठिन हो गया है, जो चोरी का परित्याग करते हैं वे ही सच्चे धर्मात्मा सुशील और ज्ञानी हैं, विवेकवान् हैं, विचारशील हैं, जगतके उपकारी तथा धर्मके पालन न करनेवाले जैन हैं।

कुशील पर विचार

चौथा मूलगुण परस्त्री त्याग (कुशील त्याग) नामका ब्रह्मचर्याणुव्रत है। यह सर्वोत्कृष्ट और अति दुर्धर व्रत है, इसकी महिमा अपरंपार है, जिसके यह व्रतराज है उसकी देवगण प्रत्यक्ष प्रकट होकर पूजा करते हैं। समस्त देव मानव उसके चरेल (दास) हो जाते हैं। संसारमें कोई दिव्यशक्ति बलवान नहीं है जो इस व्रतराजके सामने अपना बल प्रकट करसके। मोक्षमार्गकी सफलता और सिद्धि इस एक व्रतराजके पालन करनेसे नियमपूर्वक होती है, वही पुण्यात्मा है जिसके यह व्रत राज मन वचन कायकी शुद्धता पूर्वक विराजमान है, वही भव्यात्मा है, वही विशुद्ध सम्यग्दर्शनका धारक है, वही मोक्ष मार्गमें रत है और वही परमात्माके स्वरूपको प्राप्त करनेवाला है।

समस्त व्रत तप जप ध्यान संयम नीति और सदाचारकी शोभा एक इस व्रतराजके धारण करनेसे ही होती है। इसके

बिना सब बातें निरर्थक हैं, दुःखको प्रदान करनेवाली हैं। आत्मवीर्यको प्रकट करनेका यदि संसारमें मार्ग है तो एक यह व्रतराज है। इसके बिना समस्त कर्तव्य हीन मलिन और निंद्यापूर्ण है।

गृहस्थोंको यह व्रतराज पुण्यकी प्राप्ति और कर्मोंका नाश करनेके लिये धारण कराया जाता है। जो लोग शरीरको पुष्ट बना कर विषयसेवन करनेके लिये ब्रह्मचर्य पालते हैं वे इस व्रतके माहात्म्यको बिलकुलही समझे नहीं हैं। वे परमपूज्य इस व्रतराजके स्वरूपको सर्वथा नहीं जानते हैं। जो लोग आत्माको नहीं मानते हैं, पुण्य पापको नहीं जानते हैं, धर्म और कर्मोंके फल प्राप्त होने का सत्ताकी श्रद्धा नहीं रखते हैं, पाप और परलोकसे जिनको भय नहीं है वे विषयोंको सेवन करनेके लिये ब्रह्मचर्यका आडंबर रचते हैं। इस बहानेसे संसारको पापमें डुबाते हैं और स्वयं डूबते हैं।

जो भव्यात्मा कुशीलको पाप समझता है और भयंकरसे भयंकर पाप घोरपाप कुशीलसेवन करनेमें मानता है उसीको यह व्रतराज समस्त प्रकारके सुखोंको प्रदान करनेवाला, सर्वोत्कृष्ट पदको प्रदान करने वाला होता है।

कुशील सेवन सबसे घोर अन्याय है। घोर हिंसा और अशांतिका कारण है, कुशील सेवन करनेके लिये बड़े २ अत्याचार निकृष्ट रूपसे करने पड़ते हैं, जुगुप्सित काम करना पड़ता है, संसारमें जितना अधर्मकी प्रवृत्ति होती है वह केवल एक कुशील सेवनसे होती है। इसलिये आचार्योंने समस्त पापोंसे बचनेके लिये और

सन्मार्गकी प्राप्तिके लिये कुशील त्याग करना यह चतुर्थ मूलगुण बतलाया है।

विवाह बंधन पर विचार।

अन्याय अत्याचारका नाश करनेके लिये मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति और यशरक्षा एवं शीलधर्मकी रक्षाके लिये तथा जिनागममें विवाह बंधन एक धार्मिक अंग बतलाया है यदि धार्मिक तत्वको समझ कर विवाह किया जाय तो समस्त आपदाओंसे बचकर मोक्ष मार्गकी निकटता अनायास प्राप्त हो जाती है और अहिंसादि समस्त प्रकारके व्रतोंका पालन स्वाभाविकरूपसे स्वयमेव हो जाता है।

परन्तु जिस देशमें यह विवाहबंधन धार्मिकरूपसे नहीं होता है वहा पर पैशाचिक अत्याचार खुले रूपसे दिनदहाडे निर्लज्जता पूर्वक चाह चाह कर होते हैं। इतनाही नहीं किंतु संसारकी प्रगति विषयकी ओर प्रवाहित होने लगती है इस प्रकारके जगमें बड़े २ उत्पात प्रजाको सहन करने पडते हैं, और घोरसे घोर पाप करने पडते है। अगणित हिंसा असत्य भ्रूणहत्या और बड़े भयंकर शूल नित्यप्रति करने पडते हैं। मानव जीवनका बहुतसा भाग कलह द्वेष इर्षा मात्सर्य और विषयलोलुपतामें अशांतिसे कष्ट पूर्वक जाता है, कितने ही सुखके साधन हों परन्तु सुख और संतोष रंचमात्र भी प्राप्त नहीं होता है प्राय अधिकतर मानवोंका जीवन क्लेश पूर्ण दु खमय और भाररूप मालूम पड़ता है।

सब प्रकारके सुखकी अबाधित अवस्थामें भी जिस देशमें

विवाहको धार्मिक तत्व बतलाया गया है वहां पर सतोष पूर्वक सुख प्राप्त होता है। यह बात पाश्चिमात्य और भारतवर्षकी परिस्थितिसे सबको अनुभवमें आती है।

प्रेम और परस्पर सुख दु खमें सहयोगिता वहीं पर होती है जहापर विवाहबधन धार्मिकरूपमें होता है, इसके विपरीत जहापर विवाहको धार्मिकबधन नहीं माना है वहापर प्रेमका नाम निशान नहीं रहता है, सुख दु खका सहयोगिताकी बात तो दूर रहा।

व्यभिचारका दूषणावह प्रवृत्ति उसी देशमें मर्यादा रहित होती है कि जहा पर कि विवाह धार्मिकरूप नहीं है। साठ साठ सत्तर सत्तर वयकी स्त्रिया वहा पर अपने विवाह बीस पचास कर लेता है। बल्कि अस्सी वर्षकी अवस्थामें ३३ वा विवाह कई स्त्रियोंका विलायतमें हुआ है, इससे व्यभिचार और अमानुषी कृत्योंका दृश्य सबको देखकर कप आता है। कितनी ही स्त्रिया मोटरोंमेंसे लूट भी जाती हैं और चाहे जिस धीमान् और विद्वानकी स्त्रीको कोई भी चाहे उड़ा ले सकता है, तलाक दिला कर एक बार नहीं अनेक बार ग्रहण कर सकता है और छोड़ सकता है। अपनी आखोंके सामने व्यभिचार कराने पर भी नहीं रोक सकता। तब वहा पर पतिपत्नीमें प्रेम कैसे स्थिर और आजन्म पर्यत रह सकता है? और सुख दु खकी सहयोगिता रह सकती है?

ऐसे जीवनको पशुजीवन कहें तो भी कुछ हानि नहीं। ऐसा निकृष्ट चारित्रहीन जीवन विवाहको धार्मिकरूप नहीं माननेसे ही होता है।

विधवा और सधवायें जहा पर व्यभिचार वढानेके लिये अपने २ विवाह अनेक करती हैं वहा पर ब्रह्मचर्य किस प्रकार ठहर सक्ता है। जहा पर प्राणात होने पर भी मनसे परपुरुषकी अभिलाषा नहीं की जाती है वहा पर ही ब्रह्मचर्य व्रत नियमसे स्थिर होता है।

जहापर विवाहको धार्मिक माना है वहापर ऐसी सुशील स्त्री होती हैं कि अनेक देवागना समान सुन्दर स्त्रिया राज्यके प्रलोभनको तुच्छ समझकर और अपने शील (ब्रह्मचर्य) को उत्तम समझ कर प्राणोंको होमकर शीलकी रक्षा करती हैं।

परतु पाश्चात्य देशमें लोभ और धनके प्रलोभनमें आकर स्त्रिया अपने पतिको मारकर तलाक देकर दश दश पाच पाच पति कर लेती हैं और फिर भी पूरा जीवन नहीं होता है यह सव विवाहको धार्मिक वधन नहीं समझनेका कटुक फल है।

हजारों स्त्रियोंने अपने अपूर्व सुखोंको लातमारकर जंगलमें रहकर दुख सहन स्वीकार किया परतु अपने पतिदेवको छोडकर बड़े २ राजा महाराजा और श्रीमन्तोंको तुच्छ माना यह सब विवाहको धार्मिक वधन माननेका ही फल है।

वास्तवमें शीलधर्म उसी देशमें ठीक २ पाया जा सकता है जहापर विवाह धार्मिककार्य माना जाता है।

आज भारतवर्षमें भी पश्चिमी वातावरणोंका असर कुशिक्षा-से होता जाता है इसीलिये विधवाविवाह सधवाविवाह आदिके द्वारा व्यभिचार और पापकी वृद्धि करनेमें स्वार्थी कामातुर अज्ञानी

तन मनसे लगे हुए हैं, लोगोंको बड़े २ फायदेके गीत बतलाये जाते हैं परन्तु अन्तरमें भयानक पापकी प्रवृत्ति भरी होती है।

व्यभिचारकी वृद्धि जैसी आजकलके नई रोशनीवाले पुरुषोंसे हो रही है वैसी अन्यसे नहीं। व्यभिचार बढ़ानेके लिये नित्य नई स्कीमें तैयार की जाती हैं। कुप्रथाओंसे व्यभिचार कराया जाता है और यत्रकी रचनासे ऐसी स्त्रियां बनाई जाती हैं या ऐसे साधन तैयार किये जाते हैं जिनसे व्यभिचार बढ़े यह सब कुशिक्षा और कुज्ञान की महिमा है।

जैनसमाजमें विधवाविवाह और सधवाविवाहका पूर्वरंग प्रारंभ होगया है और इसके द्वारा व्यभिचार एवं पशुजीवनका प्रचार ऐसे ही कुशिक्षितोंके द्वारा हो रहा है। जिनको हिंदू ललनाओंके आदर्श जीवनका महत्व मालूम नहीं है जिससे भारत का गौरव सर्वान्च समुन्नत है।

जिनको धर्मका मर्म मालूम नहीं है जो जिनवे जिनागमका श्रद्धान नहीं है जिनको पापोंसे भय सर्वथा नहीं है जिनको कर्म और कर्म फलका विश्वास नहीं है जिनको शीलपालन करनेकी शक्तिसे होनेवाली विशुद्धताका ज्ञान नहीं है ऐसेही व्यक्ति कुशिक्षा और कुसंगतिमें बहकर व्यभिचार बढानेके लिये विधवाविवाह और सधवा विवाह बतलाते हैं।

असलमें जिनको बचपनसे ही कुशिक्षाके प्रभावसे व्यभिचार की कुत्सित आदत पड गई है, दूसरोंकी मा बहिनकी तरफ दृष्टि लगाकर बचपनसे ही भले घरोंकी इज्जतको पानीमें मिलानेकी

चेष्टा जिनने की है ऐसेही नरपिशाच व्यभिचारमें निमग्न होजाते हैं और अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये मिथ्या प्रलोभनोंके द्वारा भोली जनताको धर्मविहीन बनाते हैं।

जो लोगोंको अनीति और पापमार्गसे छुडाकर सदाचार और आदर्श जीवनमें स्थापन करे वह सच्चा सुधारक है, उसने वास्तविक सुधार किया, जनताको सन्मार्ग बतलाया और निंद्य पापिष्ट कार्योंसे जनताको बचाकर उसका वास्तविकरूपसे हित एवं सुधार किया है।

सब पापी बनकर सारे जगतको पापी बनानेमें सुधार समझा जाय या बिगाड ? और ऐसे अधम सुधार करने वालोंको सुधारक कहाजावे या बिगाड़क ? यह बात प्रत्येक विचारशील व्यक्तिको विचार करना चाहिये।

आचार्योंने इस कुशीलत्याग अणुव्रतको चतुर्थ मूलगुणमें बतलाया है, जगतमें पवित्र आदर्श जीवनका यह मार्ग है इसके प्रभावसे दूसरोंकी मा बहिनको देखकर जरा भी मनमें विकार या कुदृष्टिकी भावना नहीं होती है। साधु पुरुष वे ही हैं कि जिनके मन ऐसे निर्मल हैं। जिनकी बुद्धिमें मलिन विचार उत्पन्न ही नहीं होते हैं। जो अपनेको (अपनी आत्माको) निंद्य पापिष्ट कार्योंसे बचाकर अपनेमें ब्रह्मचर्य स्थापन कर आदर्श जीवन बनाना चाहते हैं।

हाथमें दीपक लेकर कूआमें गिरना और भोले [illegible] को
कूआमें [illegible] [illegible]ा कार्य नहीं है। विद्वान्

कुछ शुभ साधन जीवोंको प्राप्त होते हैं वे सब पुण्यके प्रभावसे होते हैं।

धन राज्य विभूति और परम ऐश्वर्य ये सब सुखके साधन पुण्यसे स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं अनीति और अन्यायाचारसे किसके पास विभूति नहीं हुई! जब तक पुण्य सहायक है तब तक अन्याय कार्य करने पर भी कदाचित् सफल भासे यह एक बात दूसरी है परन्तु पुण्यके क्षय हो जाने पर अन्यायका फल अवश्य ही प्राप्त होगा और वह दुःख रूप होगा। इसलिये आचार्यों ने यह पांचवां मूलगुण अन्याय रोकने के लिये और जगतके उपकारके लिये बतलाया है। अपनी अपनी शक्तिके अनुसार परिग्रह (दशभेद) का प्रमाण कर संतोषमें शांति पूर्वक धर्मसाधन करते हुए अपने जीवनको सुखमय बनाना चाहिये।

अतिशय तृष्णाकी वृद्धिमें दुःखके सिवाय सुखका लेशमात्र सब नहीं है। आकुलता (चिंता) की भयंकर अग्नि तृष्णासे ही उद्भूत होती है जिसमें जीवन सहसा भस्मीभूत हो जाता है इस लिये निराकुल शांत और सुखी बननेके लिये इस व्रतका पालन प्रत्येक सन्मार्गगामी जीवोंको करना चाहिये ऐसा आशय श्री पूज्यपाद भगवान श्री समंतभद्राचार्यका है।

उपरोक्त पांच मूलगुणोंके साथ मद्यमांस मधुका परित्याग करना सो आठ मूलगुण हैं।

इन मूलगुणोंका सम्यक् पालन नैष्ठिक श्रावक करता है।

इसके प्रथम पाक्षिक श्रावक कुलपरपगसे पचफल (वटफल पीपलफल गूलर अंजीर और कठूमर) और मद्य मांस मधु सेवन की प्रवृति नहीं रखता है। इसलिये अभ्यास रूप पालन होता ही रहता है परन्तु इन मूलगुणोंका पालन व्रतरूप नैष्ठिक श्रावकसे होता है। अभ्यास रूपमें आठमूलगुणोंका पालन करना तथा व्रतरूप में पालन करना इसमें बहुत भेद है।

नैष्ठिक श्रावक मद्यमास मधुके अतीचारोंसे रहित मद्य मांसादिका परित्याग करेगा परन्तु पाक्षिक श्रावकसे मद्यमांसादिके अतीचार लगाते ही हैं क्योंकि उसके अभ्यास रूप व्रत है।

जो लोग आठ मूलगुणोंमें विभिन्नता होनेसे यह कहते हैं कि समयके फेरफारसे मूलगुणोंमें फेरफार हुआ है सो यह समझ का फेर है। वे नयकोटिसे विचार नहीं करते हैं केवल अपने मत व्यको सिद्ध करनेके लिये एक प्रकारसे धोखा देते हैं।

श्रीरत्नकरण्डश्रावकाचारमें नैष्ठिक श्रावकाचारका मुख्यरीतिसे कथन है उसमें पाक्षिक श्रावककी क्रियाओंका उल्लेख नहीं है— जल गालन, जिनदर्शन, पंचफल त्यागका विधान नहीं है, सप्तव्यसनोंका परित्यागका उपदेश नहीं है परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि सप्तव्यसनोंका सेवन श्रावक करते होंगे, अणछाणा पानी श्रावक पीते होंगे, मत्र फलोंका भक्षण श्रावकगण करते होंगे, नहीं ऐसा समझना भूल है पाक्षिकश्रावकके इन बातोंका सेवन नहीं होता है। और इनका परित्याग पाक्षिक श्रावकोंको नियमितसे करना पड़ता है समन्तभद्रस्वामीने श्री

चारमें नैष्ठिकश्रावककी लक्ष लेकर लिखा इसलिये पाचअणुव्रतोंको मूलगुणोंमें प्रतिपादन कर वतलाया -इसीलिये मूलगुणोंमें भिन्न भिन्न आचार्योंका जो मतभेद दीख रहा है वह मतभेद नहीं है किंतु भिन्न २ कक्षाओंके योग्य भिन्न २ स्वरूप प्रतिपादन किया गया है। समयके फेरफारसे भिन्नता नहीं बतलाई गई है। समस्त दिगंबर आचार्योंका मत एक है। सबका उद्देश्य एक है समस्त आचार्यगण नैष्ठिक श्रावकके लिये पंचाणुव्रतोंका पालन व्रतरूप बतलाते हैं इसीलिये व्रतरूप पंच अणुव्रत और निरतीचार मद्य मांस मधुका परित्याग इनको आठ मूलगुण स्वामी समंतभद्राचार्यने बतलाया है यही अभिमत समस्त आचार्योंका है। पंचफल और तीन मकार (मद्य मांस मधु) का परित्याग पाक्षिक अवस्था में जनसाधारणकी दृष्टिसे होता है और विशेष पात्रकी अपेक्षासे पंच अणुव्रत और तीन मकारका निरतीचार त्याग नैष्ठिक अवस्था में होता है। समस्त श्रावकाचारोंमें पांच अणुव्रतोंका स्वरूप नैष्ठिक कोटिमें प्रतिपादन किया है और मकारत्रयके अतीचारों का उल्लेख भी यहां पर ही बतलाया है इसलिये समस्त आचार्योंका मूलगुणोंका प्रतिपादन करना व्यवस्था विशेषसे एक रूपही हो गया, भेद रूप नहीं हुआ। जिनागममें कहीं भी विरोध नहीं है परंतु नयकोटिके द्वारा पदार्थोंके स्वरूपके समझनेमें बुद्धिकृत भेद है।

जिनकी बुद्धि जिनागममें कहे हुए पदार्थोंके स्वरूपको सत्य सत्य ग्रहण कर रही है वे पदार्थोंके स्वरूपको जिनागमके अनुकूल

सब सत्य रगाते हैं, जिनागममें कुछ भी भेदभाव नहीं समझते हैं किंतु जिनकी बुद्धिमें विकार है वे पदार्थके स्वरूप समझने तक पहुंचते ही नहीं है।

जिनागमका उद्देश्य अहिंसाधर्मका पालन और चारित्रके द्वारा मोक्षमार्गकी सिद्धिका है और यही उद्देश्य प्रत्येक श्रावका चारमें आचार्योंने बतलाया है।

कितनेही आचार्योंने पचफल त्याग १ मद्य त्याग २ मधुत्याग ३ मासका परित्याग ४ जिनदर्शन ५ जल गालन ६ रात्रिभोजन परित्याग ७ और जीवदया परिपालन इनको आठ मूलगुण बतलाया है।

जैनी श्रावकके तीन चिन्ह तो मुख्य हैं — जिनदर्शन जलगालन और रात्रिभोजनका परित्याग। परन्तु ये तीन बातें उन्हींके लिये हैं जिनके मद्य मास मधुका कुलाम्नायसे ग्रहण नहीं है। उनका पालन करना पाक्षिक नैष्ठिक सब प्रकारके श्रावकोंके लिये परमावश्यक है जिनके तीन चिन्ह नहीं हैं वह जैन भी नहीं है। सम्यग्दृष्टी और मोक्षमार्ग गामी होना तो दूर की बात है। परन्तु तीन चिन्हके बिना जैन कहलानेका सर्वथा अधिकारी नहीं है।

जिनेन्द्र दर्शन व जिनेन्द्रभक्ति

१-जिन जीवोंको पचपरमेष्ठी ही शरणभूत हैं। जिनको श्री जिनेन्द्रशासन सत्यरूप प्रतिभासित होता है और जिनकी श्रद्धा जिनशासनमें है ऐसे भव्यात्मा सम्यग्दर्शनके धारक नित-प्रति दिवस श्री जिनेन्द्रदेवके दर्शन, पूजन, गुणस्मरण, कर के

अपने अन्य समस्त व्यवहार भोजन पानादि कार्य करते हैं। और इसीलिये जिनदर्शनको मुख्य आवश्यक कर्तव्य मानते हैं। चाहे वे पाक्षिक हों या नैष्ठिक परन्तु जिनदर्शन करना सबका मुख्य आवश्यक नियमरूपसे पालन करनेका मुख्य कर्तव्य है उसके पालन किये बिना जैनधर्म पर श्रद्धा ही नहीं समझी जाती है। और उसके बिना जैन कैसे माना जा सकता है।

समस्त मूलगुणोंमें यह गुण सम्यग्दर्शनका बीजभूत मुख्य गुण है। जिनके जिनेन्द्रभगवानके शासनकी अविचल श्रद्धा नहीं है वह भगवानके दर्शन करनेका अनुराग क्यों व्यक्त करेगा? प्रभुकी अनन्यभक्ति उस भव्यजीवको है जिसको निश्चय और व्यवहार दोनों प्रकारसे सम्यग्दर्शन है जो नियमसे मोक्षपात्र हो चुका है क्योंकि आत्माके सच्चे स्वरूपका प्रतिदर्शन श्री जिनेन्द्र-भगवान् हैं। जीवन्मुक्त अवस्थामें आत्माका प्रत्यक्षस्वरूप भगवान् अपनी आत्माके विशुद्ध स्वरूपसे व्यक्त करते हैं, अनन्त सुख अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त वीर्य आदि आत्मीयगुणोंका साक्षात्कार अरहन्त प्रभुके स्वरूप देखनेसे होता है। इसलिये जो भव्यजीव अपने आत्माके सच्चे स्वरूपको प्राप्त होना चाहते हैं उनको श्री जिनेन्द्रभगवान्के दर्शन करना परमावश्यक है।

दूसरे संसारी जीव क्रोध मान माया लोभ काम-छल प्रपंच राग द्वेष आदि विकारोंसे अतिशय दुःखी हैं, आकुलित हैं भ्रांत हैं जन्म मरणादि दोषोंसे पूर्ण और परतन्त्र हैं उनके समस्त दोषोंको दूर करनेके लिये और परम शांत पद अनन्त सुख अवस्था प्राप्त

करनेके लिये श्री जिनेन्द्रभगवान्का दर्शन अवश्य ही करना चाहिये क्योंकि क्रोध मानादि विकारोंका अत्यन्ताभाव श्री जिनेन्द्रभगवान्ने कर परमशान्ति और सुख प्राप्त करलिया, यदि हम भी उसी मार्ग पर प्रभुके नमूनाको देखकर कामादि विकारोंको नष्ट कर सुख और शांति चाहेंगे तो श्री जिनेन्द्रभगवानकी प्रतिकृतिका दर्शन अवश्य भावभक्तिसे श्रद्धा पूर्वक नियमसे करना ही होगा अन्यथा अभीतक हमें आत्माके स्वरूपका श्रद्धान नहीं है ऐसा कहनेमें कोई भी आपत्ति नही है। जिनके आत्मश्रद्धा नहीं है उनके श्री जिनेन्द्रभगवानका भी श्रद्धान नहीं है इसलिए श्री जिनेन्द्र-भगवानके दर्शन करनेवालोंको जिनागममें सम्यग्दृष्टी बतलाया है और श्री जिनेन्द्र भगवानके दर्शनकी श्रद्धासे विहीन जैनी भाइयोंको भी मिथ्यादृष्टी अनन्त संसारी बतलाया है। अतएव जिन भाइयोंके श्री जिनेन्द्रभगवानके दर्शनका नियम नहीं है वे एक प्रकार से मिथ्यादृष्टी हैं।

कुशिक्षाका मानवजीवन पर अत्यन्त भयंकर असर हुआ है। कुशिक्षासे कोई तो मूर्ति पूजाको ढोंग समझता है कोई वाहियात समझता है। कोई अज्ञानता बतलाता है कोई इसकी इस समय आवश्यक्ता नहीं समझता है। इस प्रकार पढे लिखे लोगोंकी विचित्र प्रकारकी तर्कणायें हो रही हैं परन्तु ये सब तर्कणायें निःसार और मिथ्या हैं। मूर्तिपूजा सब किसी न किसी रूपमें करते हैं मूर्ति पूजाके बिना एक क्षणमात्र भी निर्वाह किसीका नहीं होता है तो भी ऐसे मलिन विचार आते हैं।

जब तक हृदयमें जैनधर्मकी अविचल श्रद्धा नहीं है तब तक प्रभुके दर्शनकरनेके भाव नहीं होते हैं इसी लिये आचार्योंने स्थान स्थान पर शास्त्रोंमें श्री जिनेन्द्रभगवानके दर्शन करनेवाले जीव को भव्यात्मा सम्यग्दृष्टी बतलाया है और उसीको जैन कहलानेका अधिकार दिया है उसीको मोक्षमार्गगामी पात्र माना है।

पाक्षिक शब्दका यही अर्थ है कि जिसके श्री जिनेन्द्र भगवान का पक्ष है, श्रद्धा है जिनदर्शनकी जिसके अविचल भावना है वही पाक्षिक है। जब पाक्षिक श्रावकके दर्शन करनेकी इतनी अनिचल भावना होती है तब नैष्ठिक श्रावकके विशेष दृढ़तरी भावना हो तो आश्चर्य ही क्या ? इसलिये जिनदर्शन करना यह श्रावकोंका आदि मूलगुण और जैनपनेका मुख्य चिह्न है।

जलगालनपर विचार

जल गालन (२) पानी छान कर पीना यह भी श्रावकका चिह्न है, इससे श्रावककी पहिचान होती है जो पानी छानकर पीता है उसको जैन सब कोई कहता है। यह बात दुनियामें प्रसिद्ध है कि जनी पानी छानकर ही पीते हैं यदि मार्गमें किसी कुआ पर पानी छानकर पीओगे तो कोई भी मुसाफिर (पथिक) यह कहे बिना नहीं रहेगा कि यह जैन है। जैनधर्मकी विशेष शोभा पानी छाननेसे है। जैनियोंका 'अहिंसा परमो धर्म इसीलिये प्रसिद्ध है कि जैनियों की दया इतनी भारी है कि वे पानीके भी सूक्ष्म जीवोंकी हिंसा नहीं करते हैं।

जो भाई पानीको बिना छाने पीते हैं वे जैन कहलानेके अधिकारी कदापि नहीं हो सके ? न उनको कोई भी जैन कहता है। इसलिये पानी छानकर पीना यह भी श्रावकका मूलगुण और जैनपनेका मुख्य चिन्ह है, पानी छान कर जीवानी जहा की तहा पहुचानेकी पद्धति प्राय उठ जानेसे दयाभाव भी नाम मात्रका रह जानेके साथ साथ जल छाननेकी विधि भी नहीं कही जाने योग्य है जीवोंकी रक्षाका ध्यान रखना भी परमावश्यक है।

पानी छान कर पीना यह दयाधर्मका मूल है। मोक्षमार्गका बीज है और आवश्यक कर्तव्योंमें से आदि कर्तव्य है।

रात्रिभोजन पर विचार

रात्रि भोजन त्याग (३) रात्रिमें भोजन नही करना यह श्रावकका मुख्य चिन्ह है। यह बात जगजाहिर (जगत्प्रसिद्ध) है कि जैनी भाई अत्यत क्षुधातुर होने पर भी रात्रिमें भोजन कदापि नहीं करेंगे।

रात्रिमें भोजन करनेसे मासभक्षणका दोष उत्पन्न होता है और अगणित जीवोंका वध होता है जिससे महान हिंसाका पाप भी लगता है। इसलिये जैनधर्म धारण करनेवाले भव्यात्मा जीवोंको रात्रिमें भोजन करना सर्वथा योग्य नहीं है। जो रात्रिमें भोजन करते हैं उनके दया सर्वथा नहीं होती है। मोक्षमार्गकी सिद्धिके लिये परिणामोंमें विशुद्धता नहीं होती है और न सम्यग्दर्शन धारण ... परिणाम ही बने रहते हैं।

रात्रिभोजनका परित्याग भव्यजीवोंका मुख्य चिन्ह है और पर मावश्यक कर्तव्योंमें से मुख्य कर्तव्य है।

जिनागममें रात्रिभोजन त्यागीको षट्अणुव्रतधारक बतलाया है। जितना महत्व व्रत (पंच अणुव्रत) के परिपालन करने में है उतनाही महत्व एक रात्रि भोजनके परित्याग करनेमें बतलाया है। इसस रात्रिभोजनका परित्याग करना महान व्रतको धारण करनेके समान फल (पुण्य) है।

जिनागममें रात्रिभोजन त्यागीको महान पुण्यात्मा बतलाया है। और यह बात सच (सत्य) है जिसने रात्रिमें भोजन पानका परित्याग किया है उसने अनंत जीवोंकी दया पालन कर महान पुण्यका संचय किया है।

रात्रिमें भोजन करनेवाले जीवोंको घोर हिंसाका पाप नित्य होता है। इतना ही नहीं किंतु जिसने रात्रि भोजनका परित्याग किया है। उसने एक प्रकारसे कठिन तप धारण करलिया है। एक वर्षमें छह मासका उपवास (तप) का फल उसको स्वयमेव प्राप्त हो जाता है इसलिये रात्रिभोजनका परित्याग करना जैनधर्मकी महिमाको बढाना है।

रात्रिमें भोजन करनेवाले जीवोंको प्रत्यक्षमें हानि है। भयकर रोगोंकी उत्पत्ति रात्रिमें भोजन करनेसे होती है। अपचता जठराग्निकी मंदता रात्रिमें भोजनसे होती है। क्योंकि चरकमें बतलाया है कि जठराग्निका संबंध सूर्यसे अधिक है सूर्यके उदयमें हृदयकमल प्रफुल्लित रहता है जिससे जठराग्नि उत्तेजित रहती है और रात्रिमें मंद हो जाती है।

रात्रिमें भोजन करनेसे मकडी आदि जतु भक्षण करनेमें आजावे तो विविध प्रकार रोग होते हैं। ज्यूके भक्षण करनेसे जलोदर होता है, मकडी भक्षण करनेसे बुद्धि की मदता होती है, मक्खीके भक्षण करनेसे वमन होता है, इसी प्रकार छपकली आदि और जतुके भक्षण करनेसे तत्काल ही मरण होता है। ऐसे रोगी बहुतसे देखनेमें आ आते हैं जिनको जीव जतुओंके भक्षण करनेसे रोगकी उत्पत्ति हुई है। इसलिये रात्रिमें भोजन करना सब प्रकारसे हानिप्रद और धर्मनाशक है।

दिवसमें क्षुद्र जतुओंका विहार नहीं होता है। मच्छर पतगव आदि जतु रात्रिमें ही बहु सख्यामें उड़ते हैं, किसी एक स्थान पर तो उनका इतना जोर होता है कि वहापर बैठना और काम करना कठिन हो जाता है वे रात्रिमें भोजन करनेवालेको नियमसे भक्षण करनेमें आते हैं चतुर्मासमें तो दीपक आदि प्रकाश को देख कर बहुतसे जीव जतु दीपकमें पड कर मरते हैं। प्राय उनमेंसे बहुतसे जतु रात्रिमें भोजन करने वालेको भक्षण करनेमें आते हैं। इस प्रकार रात्रिभोजन सब प्रकार से हिंसाजनक है।

रात्रिमें जिस प्रकार भोजनका परित्याग करना महान व्रत बतलाया है उसी प्रकार रात्रिमें बनाना रात्रिमें बनाये हुऐ अन्न दाल आदि पदार्थोंका भक्षण करना भी अयोग्य है। रात्रिके भक्षण करनेमें उतनी हिंसा नहीं है जितनी कि रात्रिमें भोजन बनानेमें है और रात्रिके बने हुऐ भोजनके खानेमें है। अगणित जीव यत्नाचारपूर्वक [illegible] भी रात्रिके आरंभमें मर जाते हैं।

बात सबको प्रत्यक्ष है। इसलिये रात्रिमें आरंभ करना ग्रन्थोंमें सर्वज्ञ निषेध किया है जिनको रात्रिमें भोजन करनेकी आदत है उनको रात्रिमें आरंभ अवश्य ही करना और कराना पड़ता है। जिससे महान् हिंसा होती है। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि रात्रिमें बनानेका आरम्भ नहीं करे दिवसमें बने हुये पदार्थ रात्रिमें खा लेवे तो क्या हानि है। परन्तु आचार्योंने रात्रि में भक्षण करनेका ही दृढ़ निषेध किया है चाहे दिवसका बना हो चाहे रात्रिका बना हो किसी भी पदार्थको रात्रिमें सेवन करना जिनागमकी आज्ञाके विरुद्ध है। जो ऐसा कुतर्क करते हैं वे रात्रिभोजन त्यागने मतका उद्देश्य नहीं समझे हैं? रात्रिमें भोजन करना महान् हिंसाका कारण है। चाहे दिवसके बने हुए ही पदार्थ रात्रिमें क्यों न सेवन किये जाय तो भी महान् हिंसा नियमसे होगी ही। दूसरे जिसके रात्रिभोजनका परित्याग नहीं है वह कितना ही विचार रखे परन्तु उसका स्वभाव ऐसा हो जाता है कि रात्रिमें भोजन बनानेमें ग्लानि नहीं रहती है और जीव हिंसाके प्रति जरा भी घृणा नहीं होती है तब दयाके परिणाम किस प्रकार हो सके हैं?

रात्रिमें अन्नके पदार्थ सर्वथा नहीं खाना चाहिये उत्तममार्ग तो यह है कि रात्रिमें चारप्रकार (खाद्य स्वाद्य लेह्य और पेय) के पदार्थ प्राणांत होने पर भी सर्वथा सेवन नहीं करे। सब प्रकारके आहार पानका परित्याग दिवसकी दो घड़ी बाकी रहनेके प्रथम ही कर देवे। और सूर्योदय होनेके दो घड़ी बाद सेवन करे। दिवसके

दय अस्तकी दो दो घड़ी और रात्रिको भोजनकाल नहीं माना है। परन्तु जो इतना उत्तम व्रत पालनेमें चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे अशक्त हैं वे मध्यम रूपसे व्रत पालन कर सके हैं। रात्रिमें महान् आपत्ति (रोग और मरण समयकी) आ जावे तब औषधी और पानी को ग्रहण कर अवशेष सब प्रकारकी वस्तुओंका परित्याग कर देवे। पाक्षिक श्रावकको यह व्रत मध्यम रूपसे अथवा जघन्य रूपसे नियम पूर्वक पालन करना है। जो रात्रिमें भोजन करता है वह पाक्षिक श्रावक बननेका अधिकारी सर्वथा नहीं है।

कदाचित् तीव्र चारित्रमोहनीयके उदयसे पाक्षिक श्रावक मध्यमरूपसे पालनमें सर्वथा असमर्थ हो तो जघन्यरूपसे इस व्रतको पालन करे परन्तु इस *व्रतके पालन किये बिना पाक्षिक श्रावकका पद धारण नहीं कर सका ? जघन्य रूपसे पालन करने वाले शोधित शुष्क फल —(बदाम काजू आदि) दूध पानी और औषधी आपत्तिके कालमें बिना भी ग्रहण कर सके हैं। परन्तु नैष्ठिक श्रावकको नियम पूर्वक सर्व प्रकारके आहारपान आपत्ति और निरापत्ति दोनों प्रकारकी अवस्थामें प्राणान्त होनेपर भी सेवन करनेका अधिकार नहीं है। बल्कि इस व्रतको वह निरतीचारपूर्वक पालन करेगा। स्वप्नमें भी भोजनपान करने का संकल्प या विचार नहीं करेगा। कदाचित् स्वप्नावस्थामें मन की चचलतासे भोजनपान करनेका स्वप्न भी देखे तो "इसका" प्रायश्चित्त" और दिनमें भोजन करनेमें सम्बन्धी सकल्प विकल्प नहीं करेगा

रात्रिभोजन त्याग पर ध्यान दिया जाता है, रात्रिभोजन त्यागमें नियम (कालकी मर्यादा) नहीं होती है। शास्त्रमें यावज्जीव पर्यंतका रात्रिभोजनका परित्याग किया जाता है। क्योंकि रात्रिमें भोजन करनेमें जीवहिंसा और मांसभक्षण करनेका दोष निश्चयसे ही लगता है। इसलिये इस व्रतको मुम्बापुरीमें पालन करनेको कहा जाता है। इस व्रतके पालन किये बिना मोक्षमार्गका अधिकारी नहीं है तब रात्रिमें भोजन करने वालोंको जैन किस प्रकार कहा जासकता है?

होटल और बजारके पदार्थ खानेवालोंके रात्रि भोजनका विचार नहीं होता है। क्योंकि होटलमें रात्रिके बने पदार्थ और शुद्धतासे सर्वथा रहित ही पदार्थ मिलते हैं। दूसरे होटलमें खाने वालोंको रात्रिभोजनका विचार नहीं रहता है। कुसंगतिसे ऐसी बुरी आदतें बहुतसे जैन भाइयोंको होगई हैं कि जिनका होटलमें जाकर और छुट पुट बढ़ाकर टेबल कुर्सी पर बोझ डालके साथ होटलके अभक्ष्य पदार्थोंको भक्षण किये बिना चैन नहीं पड़ती है। यद्यपि यह सब जानते हैं कि होटलके पदार्थ बेचने वाले अधिक दिवसके बनेहुये और निकृष्ट हैं तथापि अपनी स्वास्थ्य हानि सहन कर होटलका भोजन करनेमें शान मालूम पड़ती है। होटलमें सब प्रकारके नीच ऊंच मांसभक्षण करनेवाले मनुष्योंका स्पर्श किया हुआ अभक्ष्य पदार्थ मिलता है और उसके लिये द्रव्यका व्यय अधिक रूपसे करना पड़ता है तो भी होटलमें खाने बहादुरी समझी जाती है।

जिन लोगोंको सोडावाटर आदि, अभक्ष्य आदि सेवन करने
की आदतें पड गई हैं उनको ही होटलमें खाना अच्छा मालुम
होता है। ऐसे ही मनुष्य सब प्रकारकी हानिको सहन कर किसी
कामके होटलमें रात्रि या दिवस हो भोजन कर आते हैं।
जानेवाले होटलमें रात्रि या दिवस हो भोजन कर आते हैं। बाहर जानेवालोंकेलिये तो होटलके भोजन खाये विना निर्वाह
नहीं होता ऐसी दशामें अणुव्रत या सम्यग्दर्शन किस प्रकार
ठहर सकते हैं ? अस्तु जो कुछ भी हो परंतु रात्रिमें भोजन
करना श्रावकका लक्षण नहीं है।

रात्रिमें भोजन त्याग की महिमा शास्त्रोंमें महान् बतलाई है।
लक्ष्मण जब अपनी भार्या वनमालाको छोडकर रामचन्द्रजीके साथ
जाने लगे तब रानीने कहा अब यहां पर कब आओगे ? लक्ष्मणने
जल्दी आनेका सकेत किया परन्तु रानीको विश्वास नहीं हुआ, लक्ष्मणने
रानीको विश्वास दिलानेकेलिये विशुद्ध भावोंसे शपथ की।
सम्यक्त्व और अणुव्रत भंग होनेका पाप मुझे हो परंतु रानीने अंतमें कहा
कि जो आप इतनी अवधिमें नहीं आओगे तो रात्रिभोजनका पाप
आपको लगेगा। लक्ष्मणने यह प्रतिज्ञा की तब रानीने लक्ष्मणको
जानेकी स्वीकारता दी। इससे रात्रिभोजनत्यागव्रतका महिमा
कितनी उत्कृष्ट है यह बात विचारने योग्य है इसीलिये इस व्रतको
मूलगुणमें बतलाया है और जैनधर्म धारण करनेवालोंका मुख्य
चिह्न बतलाया है।

इसप्रकार जिनदर्शन, जलगालन और रात्रिभोजन त्याग ये
तीन श्रावकके ... और इन तीनोंका पालन

श्रावकोंको करना आवश्यक है। इस प्रकार जिनदर्शन १ जलगालन २ और रात्रिभोजन त्याग ३ इन तीन गुणोंके साथ मद्य ४ मांस ५ मधु ६ और पंचफलोंका त्याग ७ तथा जीवदया ८ ये प्रकार आठ मूलगुण जिनागममें बतलाये हैं। जिनमेंसे जिनदर्शन १ जलगालन २ रात्रिभोजनत्याग ३ मद्य ४ मांस ५ मधु ६ और पंचफल त्यागका दिग्दर्शन हो चुका है। एक जीवदयाका विशेष स्वरूप बतलाया है। परन्तु इसके प्रथम पंचफल त्यागके विषयमें कुछ खुलासा भटीचार्योंका कर देना आवश्यक समझते हैं।

पंचफलका त्याग करनेवाले भव्यजीवको ऐसी वनस्पतिका सेवन नहीं करना चाहिये कि जिसमें फल स्वरूप हो और जीवोंकी हिंसा अनन्तगुणी हो। वनस्पतिमें जीवोंकी दो प्रकारकी हिंसा होती है, कितनी हा वनस्पति ऐसी हैं कि जिसमें त्रस जीवोंका वास प्रचुरतासे होता है, जो यत्नपूर्वक शोधन करने पर भी निवारण नहीं हो सक्ता है। ऐसी वनस्पतिका सेवन करना स्वभावसे निषिद्ध है क्योंकि ऐसी वनस्पतिके भक्षण करनेमें मांसभक्षणके दोषोंकी संभावना होती है अथवा मांसभक्षणके दोषोंकी सद्भावना बनी रहती ही है। पंचफलोंका परित्याग इसलिये कराया जाता है। इसलिये जिन वनस्पतियोंमें अधिक त्रसजीव हैं उसका भक्षण सर्वथा नहीं करना चाहिये।

जिन वनस्पतियोंमें त्रसजीव तो होते नहीं हैं। परन्तु स्थावर कायके अनंतजीव अधिकतासे रहते हैं, ऐसी वनस्पतिके सेवन करनेमें यद्यपि मांस भक्षण करनेका दोष नहीं आता है तथापि

कदको सुखाकर खानेकी पद्धति भी जिनागमके विरुद्ध है, जो कद सूठी हल्दी आदि बजारमें सूखे स्वयमेव प्राप्त होते हैं उनका उपभोग करनेके लिये अधिक विचार नहीं है। परंतु खास इरादे से सुखाकर इस कदका सेवन करना सर्वथा अयोग्य है, जीव हिंसा का कारण है और विशेष रागका होनेसे अनंत संसारको बढ़ाने वाला है।

इस कदोंको सुखाकर अथवा पकाकर भी सेवन करनेकी आज्ञा जिनागममें नहीं बतलाई है, उन कदोंको छेदन भेदन कर या नमक आदि पदार्थ डालकर भक्षण करना भी निषिद्ध है, इस लिये कदको किसी प्रकार सेवन नहीं करना चाहिये।

जीवदया पर विचार।

जीवदया—जीवोंकी दया करना श्रावकोंका आदि कर्तव्य है, वास्तविक जीवोंकी दया पच अणुव्रतके पालन करनेसे होती है। पंच अणुव्रतोंको धारण किये बिना यथार्थ जीवदयाका पालन नहीं होता है। इसलिये जीवदया शब्दसे कितने ही पंच अणु व्रतोंका ग्रहण करते हैं, परन्तु यहापर जीवदया से अभयदान ग्रहण किया है।

मरते हुये जीवोंको सर्व प्रकारसे बचाकर जीवनदान देना रक्षा करना वह अभयदान कहलाता है। कसाइयोंसे जीवोंको बचाना—भूखसे पीडित दुखी मनुष्योंको अन्नदान करुणा बुद्धिसे देकर बचाना, रोग आधि व्याधिसे पीडित मनुष्य पशु आदि जीवों को औषधदान देकर बचाना यह सब अभयदान है।

धर्मके नामपर होनेवाली हिंसासे जीवोंकी रक्षा करना सो भी अभयदान है। हिंसाके कारखाने जीववधके व्यापार अन्याय और विप्लवसे होनेवाली हानिर्मेंसे जीवोंको रक्षा करना सो भी अभयदान है। जीवों पर करुणा बुद्धि रखना सो जीवदया है।

इस प्रकार संक्षेपसे श्रावकोंके मूलगुण आठ हैं, इनके पालन करनेसे सन्मार्ग प्रकाशित होता है सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि होती है चारित्रकी धारणा होती है, धर्मका स्वरूप जाना जाता है और आत्म स्वरूपकी प्राप्ति होती है। इस लोक और परलोकमें सुखकी प्राप्ति तथा अंतमें मोक्षकी प्राप्ति होती है।

आठ मूलगुण पालन करनेमें विवेक बहुत रखना चाहिये अमर्यादित वस्तुओंका सेवन करना छोड़ देना चाहिये। भोजन शुद्धिपर विशेष ध्यान रखना, स्नानशुद्धि, वस्त्रशुद्धि, पिंडशुद्धि व्यवहार शुद्धि आदि पर विशेष ध्यान रखना चाहिये उतना ही विशेष लाभ होगा।

जितने निर्मल परिणाम शुद्ध संस्कारोंसे होते हैं उतने अन्यसे नहीं। जिस प्रकार कच्चे घड़े को अग्निके संस्कारसे दृढ बनालेते हैं उसी प्रकार विशुद्ध संस्कारोंसे सम्यग्दर्शनकी दृढता होती है। चौकाकी विशुद्धि, अन्नपानकी शुद्धि, क्रियाकी शुद्धि, मलिन पदार्थके स्पर्शसे होने वाली मलिनताकी शुद्धियों पर श्रावक जैन भाइयोंको पूर्ण ध्यान देना चाहिये तबही मूलगुणोंका पालन निरवद्य (निर्दोष्यार्) रूपमें होगा और यही सच

पूज्यपाद श्री जगतवंद्य आचार्य शांतिसागरजीके समस्त संघसे संसारमें विशुद्धसंस्कारोंका बीज सर्वत्र अंकुरित होंगे और जगतके जीवोंको अक्षय पदकी प्राप्ति होगी। मैं भी अपने भावोंकी विशुद्धिके लिये भक्ति भावोंसे प्रभुके चरणकमलोंका अनन्य शरण लेकर कृतार्थ होनेकी भावना करता हूं और मैं विशुद्ध मन वचनसे चाहता हूं कि हे जगतके जीवो, जागो जागो प्रभुका शरण लो। समस्त जीवोंके पुण्य प्रभावसे करुणा निधान श्री आचार्य महाराजका अवतार वर्तमान समयमें तीर्थंकरके समान कल्याण करनेवाला हुआ है उससे अवश्य मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति होगी और जीवोंको सुख शांति प्राप्त होगी।

॥ समाप्त ॥



॥ वो ॥

६६८

* श्रीवीतरागायनम *

जगद्विख्यात लोक मान्य

हेत बाल गङ्गाधर तिलक का

व्याख्यान।

प्रकाशक

सन्तराम मङ्गतराम अम्बाला निवासी

मिलने का पता—श्री आत्मानंद जैनसभा

अम्बाला शहर।

श्री आत्मानन्द जैन पुस्तक प्रचार मण्डल-देहली के

प्रबन्ध से छपा

प० अनन्तराम के प्रबन्ध से

सेठ रामगोपाल प० अनन्तराम के सद्धर्म प्रचारकयन्त्रालय

देहली में मुद्रित।

श्री वीर निर्वाण सं० २४४० विक्रम् सं० १९७१

श्री आत्म सं० १९ ईस्वी सन् १९१४

प्रथमवार २०००] [मूल्य एक पैसा

तारीख ३० नवम्बर सन् १९०४ श्री जैन श्वेतांबर कान्फरेंस के तीसरे अधिवेशन पर बडौदे में माननीय पंडित बालगंगाधर तिलक ने एक मराठी भाषा में एक व्याख्यान दिया था उसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है।

'जैन धर्म की प्राचीनता'

जैन धर्म का महत्व नामक पुस्तक में से उद्धृत।

जैन धर्म प्राचीन होने का दावा रखता है, मैं जैन नहीं हूं, परन्तु मैंने जैन धर्म के इतिहास तथा जैन ग्रन्थों का अवलोकन किया है, और जैन धर्म के संसर्ग से बहुत कुछ परिचय भी पाया है, इस

लिये इन दो आधारों से आज जैन धर्म के विषय में कुछ कहने की इच्छा करता हू। व्याख्यान किस भाषा में दिया जावे यह विषम प्रश्न है, परन्तु मैं अंग्रेजी की अपेक्षा मराठी में देना अच्छा समझता हू, क्योंकि मराठी भाषा श्रोताओं का अधिक भाग समझ सकेगा ऐसा जान पड़ता है, मैं जैन धर्म के विरुद्ध बोलने के लिये खडा नहीं हुआ हू परन्तु उसके अनुकूल थोडे से शब्द कहना चाहता हू जैन धर्म विशेष कर ब्राह्मण धर्म के साथ अत्यंत निकट सबध रखता है। दोनों धर्म प्राचीन और परस्पर सबध रखने वाले हैं जैन हिन्दू ही हैं, हिन्दुओं से बाहिर नहीं हैं वे हिन्दुओं से पृथक् नहीं गिने जा सकते अनेक महाशय जैनियों को हिन्दू धर्म से पृथक् करते हैं और हिन्दू धर्म से जैन धर्म को निराला समझते हैं परन्तु यथार्थ में यदि देखा जावे तो वह हिन्दू धर्म ही है, जैन समुदाय हिन्दू कौम में ही है, जिस हिन्दूधर्म में अन्य अनेक धर्मों की गणना होती है, उसी हिन्दू धर्म में जैन धर्म की भी गणना है कितने कों ने भेद बतलाया है परन्तु वह भेद यथार्थ नहीं है. जैन और ब्राह्मण धर्म हिन्दू धर्म ही हैं ग्रथों तथा सामाजिक व्याख्यानों से जाना जाता है, कि जैन धर्म

अनादि है. यह विषय निर्विवाद तथा मत भेद रहित है सून इस विषय में इतिहास के दृढ सबूत हैं. और निदान खिस्ती सन् से ५२६ वर्ष पहिले का तो जैन धर्म सिद्ध है ही हिन्दू धर्म के परिचयी जानते हैं. कि शक वालों के शक चलरहे हैं मुसलमानों का शक खिस्तियों का शक विक्रम शक शालिवाहन शक. इसी प्रकार जैन धर्म में महावीर स्वामी का शक चलता है जिसे चलते हुए २४०० वर्ष हो चुके हैं शक चलाने की कल्पना जैनी भाइयों ने ही उठाई थी. वीर शक के पहिले युधिष्ठिर का शक चलता था ऐसा कहाजाता है, परन्तु उस कल्पना का वर्तमान समय से कुछ सबध नहीं है, यद्यपि जैन धर्म प्राचीनता में पहिले नम्बर नहीं है तथापि प्रचलित धर्मों में जो प्राचीन धर्म है उनमें यह प्राचीन है- जैन धर्म की प्रभावना महावीर स्वामी के समय में हुई थी. महावीर स्वामी जैनधर्म को पुन. प्रकाश में लाये इस बात को आज २४०० वर्ष व्यतीत होचुके. उसी समय से जैन धर्म अस्खलित रीति से चलरहा है इसी प्रकार ब्राह्मण धर्म अथवा हिन्दू धर्म प्राचीन हैं. वर्तमान में जो हिन्दू हैं वे एक समय चार वर्णों में विभक्त थे. उनमें के ही जैनी हैं. ब्राह्मण क्षत्री वैश्य और

शूद्र ये चार वर्ण थे इन्हीं चार वर्णों में से जैनियों का समुदाय उत्पन्न हुआ है इस कारण से दोनों धर्म की समानता आज तक व्यक्त हो रही है। इन दोनों धर्मों की एकता प्रकट रीति पर जानी जा सकती है और पृथक्ता की भ्रान्ति का निवारण अभ्यास से होसकता है क्योंकि अब इस भ्रांति के टिकने योग्य स्थान नहीं है. गौतमबुद्ध महावीर स्वामी का शिष्य था ऐसा पुस्तकों से विदित होता है जिससे स्पष्ट जाना जाता है कि बौद्ध धर्म की स्थापना के प्रथम जैन धर्म का प्रकाश फैल रहा था यह बात विश्वास करने योग्य है गौतम और बौद्ध के इतिहास म २० वर्ष का अंतर है चौबीस तीर्थंकरों में महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थंकर थे, इसी से भी जैन धर्मकी प्राचीनता जानी जाती है बौद्ध धर्म पीछे से हुआ यह बात निश्चित है. बौद्धधर्म के तत्व जैन धर्म के तत्वों के अनुकरण है।

"ब्राह्मण धर्म पर जैन धर्म की छाप"

महाशयो! यहां पर मुझे एक आवश्यक बात प्रगट करना है। वह यह है कि अनुमान ५००, ६०० वर्ष पहिले जैन धर्म और ब्राह्मण धर्म इन दो धर्मों का तत्व संबंधी झग-

दा मच रहा था मत भेद तथा विचारांतरों के कारण जैसे मौके निरंतर आया करते हैं वैसा वहभी एक मौका था. एक जीतता है और दूसरा हारता है इस में मत भेद होता है परन्तु विशेष अन्तर गिनने योग्य नहीं होता श्रीमान महाराज गायकवाड ने पहिले दिन कान्फरँस में जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार "अहिंसा परमो धर्मः" इस उदार सिद्धान्त ने ब्राह्मण धर्म पर चिरस्मरणीय छाप (मोहर) मारी है यज्ञ यागादिकों में पशुओं का वध होकर जो "यज्ञार्थ पशु हिंसा" आजकल नहीं होती है जैन धर्म ने यही एक बड़ी भारी छाप ब्राह्मण धर्म पर मारी है। पूर्वकाल में यज्ञ के लिये असंख्य पशु हिंसा होती थी, इस के प्रमाण मेघ दूत काव्य तथा और भी अनेक ग्रंथों से मिलते हैं। रतिदेव नामक राजा ने जो यज्ञ किया था, उस में इतना प्रचुर पशुवध हुआ था कि नदी का जल खून से रक्त वर्ण होगया था। उसी समय से उस नदी का नाम चर्मवती प्रसिद्ध है, पशुवध से स्वर्ग-मिलता है, इस विषय में उक्त कथा साक्षी है, परन्तु इस घोर हिंसाका ब्राह्मण धर्म से बिदाई ले जाने का श्रेय जैन धर्म के हिस्से में है।

शूद्र ये चार वर्ण थे इन्हीं चार वर्णों में से जैनियों समुदाय उत्पन्न हुआ है, इस कारण से दोनों धर्म समानता आज तक व्यक्त हो रही है। इन दोनों धर्मों एकता प्रकट रीति पर जानी जा सकती है और पृथक् की भ्रान्ति का निवारण अभ्यास से हो सकता है पर कि अब इस भ्रांति के टिकने योग्य स्थान नहीं। गौतमबुद्ध महावीर स्वामी का शिष्य था ऐसा पुस्तक से विदित होता है, जिससे स्पष्ट जाना जाता है कि बौद्ध धर्म की स्थापना के प्रथम जैन धर्म का प्रकाश फैल रहा था यह बात विश्वास करने योग्य है, गौतम और बौद्ध के इतिहास में २० वर्ष का अंतर है चौबीस तीर्थंकरों में महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थंकर थे, इसी से भी जैन धर्मकी प्राचीनता जानी जाती है बौद्ध धर्म पीछे से हुआ यह बात निश्चित है, बौद्ध धर्म के तत्व जैन धर्म के तत्वों के अनुकरण हैं।

"ब्राह्मण धर्म पर जैन धर्म की छाप"

महाशयो! यहां पर मुझे एक आवश्यक बात प्रगट करना है। वह यह है कि अनुमान ५००, ६०० वर्ष पहिले जैन धर्म और ब्राह्मण धर्म इन दो धर्मों का तत्व सम्बधी झग-

सिद्धांत जैन धर्म में प्रारम्भ से है । और इस तत्व को समझने की त्रुटी के कारण बौद्ध धर्म अपने अनुयायी चीनियों के रूप में सर्व भक्षी होगया है ।

ब्राह्मण और हिन्दु धर्म में मांस भक्षण और मदिरा पान बन्द होगया यह भी जैन धर्म का प्रताप है अहिंसा और दयाकी विशेष प्रीति से कई एक लोगों के हृदय हिंसा के दुष्कृत्यों से दुखने लगे, और उन्हों ने आवेशवश स्पष्ट कह दिया कि जिस वेद में हिंसा है हम को वह वेद मान्य नहीं । जो देवहिंसा से प्रसन्न होता हो उस देव की हमको आवश्यकता नहीं और जिन ग्रंथों में हिंसा का विधान होवे वे ग्रन्थ हम से दूर रखे जावें । दया और अहिंसा की ऐसी ही स्तुत्य प्रीतिने जैन धर्म को उत्पन्न किया है, स्थिर रक्खा है और इसी से चिरकाल स्थिर रहेगा इस अहिंसा धर्म की छाप जब ब्राह्मण धर्म पर पडी और हिंदुओं को अहिंसा पालन करने की आवश्यकता हुई, तब यज्ञ में पिष्ट पशु का विधान किया गया सो महावीर स्वामी का उपदेश किया हुआ धर्म तत्व सर्व मान्य होगया और अहिंसा जैन धर्म तथा ब्राह्मण धर्म में मान्य हो गई। ब्राह्मण धर्म में दूसरी त्रुटी यह थी कि चारों वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य

झगडे की जड हिंसा।

ब्राह्मण धर्म और जैन धर्म दोनों के झगडे की जड हिंसा थी वह अब नष्ट होगई है। और इस रीति से ब्राह्मण धर्म अथवा हिन्दू धर्म को जैन धर्म ने अहिंसा धर्म बनाया है, हिंसी किसी जीवके मारने अथवा किसी के जीव लेनेको कहते हैं। ससार के लग भग सपूर्ण धर्मों में हिंसा का निषेध किया है। बौद्ध धर्म में निषेध है, परतु चीनादि देश वासी बौद्धों में हिंसा का पारावार नहीं है। हिन्दुस्तान से बौद्ध के विनाश होने का यही एक कारण है। बाइबिल में कहा है कि (Do not kill) हिंसा मत करो परन्तु इसका अर्थ क्रिस्ती लोग इतना ही करते हैं कि "खून मतकरो" इस रीति से बाइबिल की आज्ञा का निराला ही अर्थ किया जाता है सहस्रावधि मनुष्यों का युद्ध में सहार होता है, परन्तु उस में राजा की आज्ञा कारण भूत बतलाई जाती है, यथार्थ में अहिंसा का बहुत थोडा अर्थ किया जाता है, सो हिंद में जो लक्षावधि पशुओं का वध होता है उस के पाप का बोझा क्रिस्ती धर्म के अर्थ समझाने वालोंके सिर पर है। परतु ब्राह्मण धर्म पर जो जैन धर्म ने अक्षुराण छाप मारी है उस का यश जैन धर्म के ही योग्य है अहिंसा का

सिद्धांत जैन धर्म में प्रारम्भ से है । और इस तत्व को समझने की त्रुटी के कारण बौद्ध धर्म अपने अनुयायी चीनियों के रूप में सर्व भक्षी होगया है ।

ब्राह्मण और हिन्दु धर्म में मांस भक्षण और मदिरा पान बन्द होगया यह भी जैन धर्म का प्रताप है अहिंसा और दयाकी विशेष प्रीति से कई एक लोगों के हृदय हिंसा के दुष्कृत्यों से दुखने लगे, और उन्हों ने आवेशवश स्पष्ट कह दिया कि जिस वेद में हिंसा है उसको वह वेद मान्य नहीं । जो देवहिंसा से प्रसन्न होता हो उस देव की हमको आवश्यकता नहीं और जिन ग्रंथों में हिंसा का विधान होवे वे ग्रन्थ हम से दूर रखे जावें। दया और अहिंसा की ऐसी ही स्तुत्य प्रीतिने जैन धर्म को उत्पन्न किया है, स्थिर रक्खा है और इसी से चिरकाल स्थिर रहेगा इस अहिंसा धर्म की छाप जब ब्राह्मण धर्म पर पड़ी और हिंदुओं को अहिंसा पालन करने की आवश्यकता हुई, तब यज्ञ में पिष्ट पशु का विधान किया गया सो महावीर स्वामी का उपदेश किया हुआ धर्म तत्व सर्व मान्य होगया और अहिंसा जैन धर्म तथा ब्राह्मण धर्म में मान्य हो गई। ब्राह्मण धर्म में दूसरी त्रुटी यह थी कि चारों वर्णों अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री.

तथा शूद्रों को समान अधिकार प्राप्त नहीं था । यज्ञ या गादि धर्म केवल ब्राह्मण ही करते थे क्षत्री और वैश्यों को यह अधिकार नहीं था और शूद्र बिचारे तो ऐसे बहुत विषयों में अभागे बनते थे, इस प्रकार मुक्ति प्राप्त करने की चारों वर्णों में एकसी छुट्टी नहीं थी। जैन धर्मने इस त्रुटी को भी पूर्ण की है और पीछे से श्रीमान् शङ्कराचार्य ने जो ब्राह्मण धर्म का उपदेश किया है, उस में धर्म का मुख्य तत्व अहिंसा बतलाया गया है। भगवद्गीता में यह भी कहा गया है कि भक्ति योग से स्त्रियें तथा शूद्र मोक्ष पासक्ते हैं । जैन धर्मने जिस प्रकार मोक्ष का मार्ग सब के लिये खुला रक्खा है, उसी प्रकार ब्राह्मण धर्म ने भी अपने मान्य ग्रन्थों के द्वारा बतलाया है, अर्थात् अहिंसा और मोक्ष का अधिकार इन दोनों ही धर्मों में एक सरीखे माने गये हैं जैन धर्मी वेदों को नहीं मानते हैं । इसी प्रकार ख्रिस्ती आदि भी वेद को नहीं मानते ह, परन्तु जैन धर्म यह एक हिन्दु धर्म है, तथा ब्राह्मण धर्म से बहुत सबंध रखता है पूर्वकाल में अनेक ब्राह्मण और जैन पंडित जैन धर्म के धुरधर विद्वान् हो गये हैं और विद्या प्रसंग में दोनों का पहिले से प्रगाढ़ सम्बन्ध है, ब्राह्मण धर्म जैन धर्म से मिलता हुआ है ।

इस कारण टिक रहा है बौद्ध धर्म विशेष अमिल होने के कारण हिन्दुस्तान से नाम शेष होगया । कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य का बडा वाद विवाद हुआ था, परन्तु जय तथा पराजय कुरोपाटकिन तथा कुरोकी के समान ही हुई थी जैन धर्म तथा ब्राह्मण धर्म का पीछे से कितना निकट सम्बन्ध हुआ है सो ज्योतिष शास्त्री भास्कराचार्य के ग्रंथ से विशेष उपलब्ध होता है, उक्त आचार्य ने ज्ञान दर्शन और चारित्र (character) को धर्म के तत्व बतलाये हैं उन्हों ने कहा है कि ब्राह्मण धर्म और जैन धर्म विशेष सम्बन्ध से वेष्टित हैं एक ही अन्य प्रजा के दोनों धर्म हैं इन दोनों धर्मों का ऐसा निकट सम्बन्ध निरन्तर ध्यान में रखना चाहिये, और परस्पर ऐक्य बढाने का प्रयत्न करना चाहिये स्वर्गीय मि० वीरचन्द राघवजी गांधी जो अमेरिका को गये थे और चिकागो के प्रदर्शन के समय स्वामी विवेकानन्द जी के साथ धर्म के व्याख्यान देते थे उन्हों ने मुझ से कहा था कि विवेकानन्द और मैं ही दोनों हिन्दु धर्म का बोध अमेरिकन् लोगों को दे रहे हैं ऐसा मुझे भान पडता था भाइयो अपने धर्म हिंदुस्थान से बाहिर क्यों नहीं स्थापित होना चाहिये ? ...कार ने हमारे ९,

तथा शूद्रों को समान अधिकार प्राप्त नहीं था। यज्ञ या आदि धर्म केवल ब्राह्मण ही करते थे क्षत्री और वैश्यों को यह अधिकार नहीं था और शूद्र विचारे तो ऐसे बहुत विषयों में अभागे बनते थे, इस प्रकार मुक्ति प्राप्त करने में चारों वर्णों में एकसी छुट्टी नहीं थी। जैन धर्मने इस त्रुटी को भी पूर्ण की है और पीछे से श्रीमान् शङ्कराचार्य ने जो ब्राह्मण धर्म का उपदेश दिया है, उस में धर्म का मुख्य तत्व अहिंसा बतलाया गया है। भगवद्गीता में यह भी कहा गया है कि भक्ति योग से स्त्रियें तथा शूद्र मोक्ष पासक्ते हैं। जैन धर्मने जिस प्रकार मोक्ष का मार्ग सब के लिये खुला रक्खा है, उसी प्रकार ब्राह्मण धर्म ने भी अपने मान्य ग्रन्थों के द्वारा बतलाया है, अर्थात् अहिंसा और मोक्ष का अधिकार इन दोनों ही धर्मों में एक सरीखे माने गये हैं जैन धर्मी वेदों को नहीं मानते हैं। इसी प्रकार सिक्खी आदि भी वेद का नहीं मानते हैं, परन्तु जैन धर्म यह एक हिन्दु धर्म है, तथा ब्राह्मण धर्म से बहुत सम्बन्ध रखता है पूर्वकाल में अनेक ब्राह्मण और जैन पंडित जैन धर्म के धुरन्धर विद्वान् हो गये हैं और विद्या प्रसंग में दोनों का पहिले से प्रगाढ सम्बन्ध है, ब्राह्मण धर्म जैन धर्म से मिलता हुआ है।

इस कारण टिक रहा है बौद्ध धर्म विशेष अमिल होने के कारण हिन्दुस्तान से नाम शेष होगया । कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य का बडा वाद विवाद हुआ था, परन्तु जय तथा पराजय क्रोपाटकिन तथा क्रोकी के समान ही हुई थी जैन धर्म तथा ब्राह्मण धर्म का पीछे से कितना निकट सबंध हुआ है सो ज्योतिष शास्त्री भास्कराचार्य के ग्रंथ से विशेष उपलब्ध होता है, उक्त आचार्य ने ज्ञान दर्शन और चारित्र (Character) को धर्म के तत्व बतलाये हैं उन्हों ने कहा है कि ब्राह्मण धर्म और जैन धर्म विशेष सम्बन्ध से वेष्टित हैं एक ही अन्य प्रजा के दोनों धर्म हैं इन दोनों धर्मों का ऐसा निकट सबन्ध निरन्तर ध्यान में रखना चाहिये, और परस्पर ऐक्य बढाने का प्रयत्न करना चाहिये स्वर्गीय मि० वीरचन्द राघवजी गांधी जो अमेरिका को गये थे और चिकागो के प्रदर्शन के समय स्वामी विवेकानंद जी के साथ धर्म के व्याख्यान देते थे उन्हों ने मुझ से कहा था कि विवेकानंद और मैं ही दोनों हिन्दु धर्म का बोध अमेरिकन् लोगों को दे रहे हैं ऐसा मुझे जान पडता था भाइयो अपने धर्म हिंदुस्थान से बाहिर क्यों नहीं स्थापित होना चाहिये ? अंग्रेज सरकार ने हमारे हाथ में

हथियार रहने देने की कोई आवश्यकता नहीं समझी और हम में उस की प्रवृत्ति भी नहीं है परन्तु अपने धर्म रूपी हथियारों से हम को सब देशों में विजय लाभ करना चाहिये हम परस्पर अपने आचरण अपने धर्मानुकूल रख के चाहें जिस जगह ऐकता से रह सकेंगे हम इस समय भी यदि विजय लाभ नहीं करें तो हमारा आलस्य और अज्ञान है सपूर्ण जैनी भाइयों तथा ब्राह्मण धर्म पालने वालों को परस्पर एक माँ बाप के युगल पुत्रों की तरह तथा एक ही पुरुष के दायें बायें हाथ की तरह एक समझ के परस्पर हाथ में हाथ मिलाके अपने अहिंसा धर्म के अभ्युदय के लिये भेद बुद्धि रहित होकर प्रयत्न करना चाहिये काल पाकर इस कार्य में यश अवश्य मिलेगा ।

॥ इति ॥



मिलने का पता–

लाला नत्थूराम जैनी जीरा जिला फिरोजपुर

बाबू चेतनदास जैनी मुलतान शहर

श्री आत्मानन्द जैन पुस्तक प्रचार मण्डल

रौशन मुहल्ला आगरा

श्री आत्मानन्द जैन पुस्तक प्रचार मण्डल

नौघरा दिल्ली